# नारी-जीवन

कुछ समस्याएँ :

लेखक

श्री रामनाथ 'सुमन'
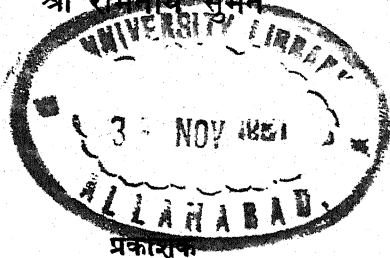
प्रकाशक

साधना-सदन

लूकरगंज

इलाहाबाद—१

डेढ़ रुपया

# निवेदन

नारी जीवन, गार्हस्थ्य और दाम्पत्य जीवन के क्षेत्र मेरे अपने हैं। इनके सम्बन्ध में मैं जो कुछ लिखता हूँ उसमें मेरी क़लम उतना नहीं बोलती, जितना दिल बोलता है। शब्दों में दिल की आग है; अन्तर की व्यथा है। लाइनें हृदय के रक्त से लिखी हुई हैं।

आज गृह-जीवन में इतनी कसक है, इतना हाहाकार है, इतनी व्यथा है कि मैं सहन नहीं कर सकता; चुप रहना मेरे लिए असम्भव है। इसीलिए इन पंक्तियों में कुछ तीखापन भी है। वे एक प्रकार के तीव्र चिन्तन ('लाउड थिंकिंग') की द्योतक हैं। और यह स्वाभाविक है। जब लेखक अपने विषय में तन्मय हो, सामाजिक समस्याएँ और व्यथाएँ उसकी अपनी समस्याएँ और व्यथाएँ हो जाती हैं।

मैं जानता हूँ, ये पंक्तियाँ उन्हें कुछ ज्यादा न रुचेंगी जिनके लिए वे लिखी गई हैं। हम आगे से मीठी बातें करते हुए पीछे से छुरा मार देने के आदी हो गये हैं। हम अपनों से भी वही कहते हैं जिसे सुनकर वे खुश हों। वह कहना हमसे नहीं होता या हमारे फैशन और सभ्यता में उसकी चलन नहीं जिससे सुननेवालों का कल्याण हो, भले चोट लगे। मीठा ज़हर हमारे गलों के नीचे उतर जाता है पर कड़ुवी खोल में भरे अमृत के लिए केवल तिरस्कार की दृष्टि हमारे पास है।

स्पष्ट है कि मैं ऐसे वातावरण में जी नहीं सकता, इसलिए उसे सहन भी नहीं करूँगा। मैं, मातृत्व का एक उपासक, नारी को नीचे न

गिरने दूँगा, और उसमें जहाँ भी विकृति है, जहाँ भी आत्मस्खलन है, उस पर प्रहार करना मेरा कर्तव्य हो जाता है ।

मैंने स्त्रियों की गौरव-गाथा गाई है; उनका स्तवन किया है । तब आज उनके अन्तःसौख्य और अन्तःस्वास्थ्य को विषाक्त करने वाले दुष्ट व्रणों पर अस्त्रक्रिया करना—फोड़ों का आप्रेशन—भी मेरा कर्तव्य है । ये कुछ लाइनें उसी कर्तव्य की दिशा में मेरे संकेत वा प्रयत्न हैं । मेरा विश्वास है, मेरी बहिनें मुझे गलत न समझेंगी; पर इतना ही बस नहीं । वे उससे लाभ भी उठावें, यही मेरा नम्र निवेदन है ।

श्री रामनाथ 'सुमन'

# विषय-सूची

श्री रामनाथ 'सुमन' लिखित
गृहस्थ जीवन की गीता
आनंद निकेतन
पढ़िये

# नारी-जीवन : कुछ समस्याएँ

श्री रामनाथ 'सुमन'

[ १ ]

# पत्नियाँ, जो पतियों को खा जाती हैं !

पत्नियाँ, जो पतियों को खा जाती हैं !—कुछ आश्चर्यजनक-सा लगता है, कुछ अटपटा भी। खास कर इस ज़माने में, जब नारी अपनी कथित पराधीनता की शृङ्खला तोड़ने को मैदान में आई है और जब पुरुष के विरुद्ध सार्वजनिक रंगमंच पर खड़ी होकर उसने समानाधिकार की घोषणा की है। हाँ, कुछ अटपटा-सा है और उससे भी बढ़कर दुस्साहस है। दुस्साहस इसलिए कि समाचारपत्रों एवं सार्वजनिक आचार ने हमें सदा से यह बताया है कि जो दिल में हो, उसे सफ़ाई के साथ किस प्रकार छिपाया जा सकता है और दिल की दुनिया ज़बाब पर किस लिए और किस तरह न चाहिए। हाँ, यह दुस्साहस है क्योंकि आधुनिक सभ्यता के नाम जो चीज़ बाज़ार में बिक रही है उसने हमें इंच-इंच मरना सिखाया है और उसके विरुद्ध विद्रोह करना महज़ फ़िज़ूल है। यह दुस्साहस इसलिए भी है कि बीसवीं शताब्दी का पुरुष नारी की ओर उंगली उठाये, यह अचिंत्य है। और जब मेरे-जैसे व्यक्ति के द्वारा यह बात हो, जिसने सदा नारी की पूजा की है और जो उसके चरणों में निरन्तर अर्घ्य देता रहा है तथा जिसने अपनी निराशा

की घड़ियों में उसकी ओर देखा है और भक्ति तथा शक्ति प्राप्त की है— तब इसे और क्या कहा जा सकता है ?

परन्तु आधुनिक सभ्यता के सम्पूर्ण वाग्जाल एवं नारी को बेहोश और बेदम करनेवाली मदपूर्ण प्रशंसात्मक छलना के होते हुए भी यह सत्य है और इसे करने की ज़रूरत है। जहाँ नारी के कष्टों की कथा बाज़ार में ज़ोरों से बिक रही है, वहाँ पुरुष की कठिनाइयाँ और समस्याएँ भी सामने आनी चाहिएँ। जब तक दोनों की समस्याएं अलग-अलग रहेंगी और जब तक नारी अपनी सुविधा, सुख एवं अधिकार की पुकार में पुरुष को भूली रहेगी और जबतक पुरुष नारी की उपेक्षा करेगा, तब तक हमारा गृह-जीवन निराश, निरानन्द और निःसत्व रहेगा। एक की कठिनाइयों को अतिरंजित करके, दूसरे को गाली देने से गृह-जीवन सुखी न होगा; दोनों की कठिनाइयाँ दोनों के समझने और और एक दूसरे के प्रति उदार दृष्टि रखने से ही जीवन सफल होगा। मैंने पत्नियों की कठिनाइयों पर बहुत लिखा है; आज दाम्पत्य जीवन के दूसरे पहलू पर भी लिखना चाहता हूँ।

आज हमारे गृह निरानन्द हो रहे हैं। उनकी चहारदिवारियों में समाज की न जाने कितनी समस्याएँ उठती हैं और डूबती हैं न जाने कितना मूक क्रन्दन, न जाने कितना अविश्वास, न जाने कितनी जलन इनमें एकत्र है। हमें कुछ शिक्षा ही ऐसी दी जा रही है कि पश्चिम जो कुछ हमारे कानों में डालता है, हम उसे तोते सा रटते और उगल देते हैं। कुछ रटी शब्दावलियाँ, कुछ ढले हुए तर्क, कुछ 'सेकेण्ड हैण्ड' विचार यही हमारी पूँजी है। चाहे जिस पत्रिका को उठा लीजिए, स्त्रियों के

विषय में वही चन्द बातें हैं, जो हमारे दिलों से नहीं, मुँह से, मशीन से भाँति निकलती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि दाम्पत्य-जीवन के सुख का नुस्खा बताने वालों एवं बताने वालियों ने न केवल दाम्पत्य जीवन को बर्बाद कर दिया है वरन् कुटुम्ब एवं समाज के बीच की कर्तव्य-शृङ्खला भी शिथिल कर दी है। आज पत्रिकाओं में जिन सभ्य नारियों के चित्र छपते हैं और जो देश की नारियों की, जबर्दस्ती, जिह्वा बनी बैठी हैं और उन्हें रास्ता दिखाने जिनका दावा है, उनमें अधिकांश स्वयं अतृप्त, असन्तुष्ट और खीझी हुई हैं और उनका दाम्पत्य-जीवन विस्मृत, विनष्ट और असन्तोषमय है। ऐसा नहीं कि हम इससे एकदम अनजान हों; हम में से अधिकांश इसे जानते हैं पर प्रवाह के विरुद्ध खड़े होने का साहस नहीं। ऐसा करने पर उस झूठी 'शिवैलरी' को धक्का लगता है, जिसने हमारी छाती में साहस तो नहीं पर धुआँ भर दिया है !

\+ \+ \+

वस्तुतः विवाहित जीवन का सुख इस बात में है कि पति-पत्नी जीवन के मर्यादा में एक दूसरे के सच्चे सहायक हों; दोनों एक-दूसरे में जो सर्वश्रेष्ठ है उसे जाग्रत करें—दोनों एक-दूसरे को उठायें। दोनों के जीवन की आवृत, प्रच्छन्न लक्ष्य एवं सत्व को प्रकाश मिले। यह सब प्रेम से ही सम्भव है; पर प्रेम वह नहीं जिसका मोल बाजार में दिन-दिन घट रहा है। वह प्रेम, जिनमें एक-दूसरे के प्रति गहरी सहानुभूति हो और गहरी उदारता हो; जिनमें हम एक-दूसरे की बुराइयों की ओर यों देखें, जैसे वे अपनी बुराइयाँ हों। जहाँ प्रेम पर बलात्कार न हो;

व्यक्तित्व पर जबर्दस्ती का बोझ न हो; पर एक-दूसरे के सुख के लिए और अपने सुख के लिए अधिकार की अपेक्षा आत्मार्पण पर अधिक जोर हो। बिना इतनी बातों के, लाख नुस्खों के साथ भी गृह-जीवन स्वाभाविक रूप से सुखी प्रसन्न नहीं हो सकता।

निश्चय ही दाम्पत्य जीवन केवल प्रेम की नींव पर खड़ा हो सकता है; किन्तु इसको उचित और स्थायी रूप तभी मिल सकता है जब नर और नारी, पति और पत्नी इस बात को सदा याद रखें कि दोनों का जीवन दोनों के लिए है; पर साथ ही दोनों मिलकर समाज के एक श्रेष्ठ घटक भी हैं और अपने अन्दर जो कुछ श्रेष्ठ है, उसे समाज और मानवता को देने के लिए ही दोनों सम्मिलन हुआ है। इस कर्तव्य के पालन में उनका प्रेम बाधक न हो, सहायक हो। दोनों एक-दूसरे को कर्त्तव्य-पथ पर बढ़ायें। निश्चय ही बिना उत्सर्ग और उदारता के यह बात नहीं हो सकती और आज उत्सर्ग के विरुद्ध जो आँधी उठी है तथा आत्मनियंत्रण के स्थान पर अधिकार और भोग की जो वृत्तियाँ जोरों के साथ हमारे दिलों में फैल रही हैं, उनके कारण जहाँ एक ओर नारी अधिक बाहरी सुविधाएँ पाकर भी अतृप्त और आकाँक्षिणी है, तहाँ पुरुष अधिकाधिक विषय-सेवी, स्त्रैण, पंगु और शिथिल हो गया है। जहाँ आज अनेक स्त्रियाँ पतियों की उपेक्षा एवं गलतफहमी के कारण नाम की सधवा होकर करीब-करीब विधवाएँ बनी बैठी हैं, तहाँ ऐसे भी लाखों पति हैं जिन्हें नारी ने गलतफहमी और दाम्पत्य जीवन की गलत धारणा के कारण मोहाविष्ट एवं अपने में केन्द्रित कर अचेत कर रखा है और उनकी शक्तियों को हर लिया

है । इस जादू में उनका—पतियों का—सब अन्तःसत्व नष्ट हो गया है और उनमें जो शक्तियाँ थीं, वे कुण्ठित हो रही हैं । वे शिथिल, एकाङ्गी हैं । नारी का जो प्रेम अमृत बनकर नर को बल देता और उठाता है, वह मदिरा बन गया है और उसे बेहोश और अक्षम किये हुए है । ऐसी ही स्त्रियाँ धीरे-धीरे पतियों को खा जाती हैं !

\+ + +

अभी कुछ ही समय पहले इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध पत्र 'डेली एक्सप्रेस' में एक लेखक ने, इस विषय पर, एक मनोरंजक लेख प्रकाशित करवाया था । उसमें वह लिखते हैं कि 'एक ज़ँगली जानवर होता है जिसमें मादा अपने नर को मारकर या जीते-जी खा डालती है । नर-भक्षण की यह मादा-वृत्ति मानवजाति के अन्दर भी प्रचलित है । यहाँ वह आँखों से दिखाई नहीं पड़ती; परन्तु इसके कारण वह और भी भयानक है । सृष्टि के चिरन्तन संग्राम का यह एक अत्यन्त घातक अंग है । और कोई लोकार्नो, कोई स्ट्रेसा अथवा हजारों सुलहनामे मिलकर भी इसको रोकने में असमर्थ हैं ।'

लेखक का कहना है कि कभी-कभी इस छिपी दुनिया के ऊपर से परदा खिसकता है । कभी-कभी कारोनर के सम्मुख लाया गया एकाध मुरदा अथवा जीते-जी पत्नि का भक्ष्य बनने का विरोध करनेवाला, अपराधी के पिंजड़े में खड़ा कोई पुरुष इस ओर जगत् का ध्यान आकर्षित करता है । पर यह तो बहुत कम होता है । बाकी का संग्राम तो निजी रहता है और घर की चहारदीवारी में ही समाप्त हो जाता है । गृह-जीवन के गुप्त रणक्षेत्र में इस युद्ध का खून

बहता है। कितने मरते हैं और कितने घायल होते हैं, इसका विवरण वहाँ नहीं रखा जाता। इस लड़ाई में प्रत्यक्ष शरीर का नहीं, आत्मा का बध होता है। बहुत धीरे-धीरे, इंच-इंच आत्मा के टुकड़े किये जाते हैं और आश्चर्य तो यह है कि न तो कतल-करनेवाले को और न कतल-किये जाने वाले को इस बध-क्रिया का अनुभव होता है। अन्दर से बिल्कुल रिक्त हो गया पुरुष इस आन्तरिक मृत्यु के सिवा अन्य बातों का पूरा-पूरा अनुभव करता है। और अनेक स्त्रियाँ अपने पतियों के चलते-फिरते, क्रियाशील कलेवर को देखकर फूली-फूली रहती हैं। उनको क्या खबर कि अन्दर वैधव्य का प्रवेश हो चुका है और चलते फिरते शरीरों के अन्दर पति के आत्माराम का बध हो चुका है। और बधिक कौन था ? स्वयं नारी !

स्त्री द्वारा बस प्रकार पुरुष की आत्मा को नष्ट करनेवाली चीज़ है स्त्री का सर्वग्राही प्रेम। किसी कवि ने कहा है कि 'प्रेम तो स्त्री का जीवन-सर्वस्व है।' बस, जिस क्षण प्रेम तुम्हारी स्त्री का जीवन-सर्वस्व बने, उसी समय सावधान हो जाना चाहिए। क्योंकि ऐसी स्त्री का उन्मादी पति-प्रेम की आकांक्षाओं का कहीं अन्त नहीं है। उसे पति-जीवन का सर्वस्व, कण-कण, चाहिए; पति के पास अपना, निजी. कुछ भी वह रहने नहीं देती। फलतः पति की स्वतन्त्र इच्छा, विवेक, स्फूर्ति सब का नाश हो जाता है। जहाँ अपनी पहुंच न हो, पति का ऐसा कोई जीवन-रस ऐसी प्रेमोन्मादिनि को सह्य कहीं और वह अपने को न रूचनेवाले एक भी पति-मित्र की जड़ जमने नहीं देती। 'मेरा पति मेरी ही आँखों के सामने बना रहे' ऐसी उसकी इच्छा होती है। ऐसा

आग्रह भी होता है जिससे पति क्या-क्या करते हैं, इसकी जानकारी रहे और क्या कहते बोलते हैं, यह सुनाई देता रहे। यह पति को कभी अकेले नहीं रहने देती; क्योंकि एकान्त-सेवी पुरुष विचार-प्रधान होने लगता है और उसके विचार-प्रधान होने का अर्थ पत्नी के प्रेम-जाल का टूटना है। यदि ऐसे सर्वभक्षी प्रेम के जबड़े से कभी यह पुरुष निकल सकता और स्नेह-सृष्टि में शरण देने लायक कोई अन्तर्राष्ट्रीय अदालत होती, तो यह पुरुष उसके न्यायासन के सामने खड़ा होकर कुछ इस प्रकार फरियाद करता—

"मैं स्वीकार करता हूँ कि इस स्त्री के प्रेम की मैंने याचना की थी और इसका प्रेम प्राप्त किया था। इस प्रेम को मैं कीमती समझता हूँ किन्तु स्त्री की स्नेह-जैसी ही मूल्यवान एवं प्रिय अन्य चीजें भी जीवन में हैं। अनेक अनिवार्य कर्त्तव्य मेरे सामने हैं। फिर मुझे अपनी अन्तरात्मा का रक्षण एवं विकास भी करना है; किन्तु यह स्त्री तो चाहती है कि इसके प्रेम को जीवन के प्रश्नों के समक्ष नहीं, वरन् उन सब के ऊपर स्थान दूँ। मेरा कहना है कि प्यार का ऐसा गुलाम मुझे नहीं बनना है।"

ऐसा बन्धन से छूटे हुए एक गुलाम से एक दिन अकस्मात् मेरी मुलाकात हो गई। यह प्रोफेसर हैं। इनकी पत्नी संगीत में प्रवीण थी और हाल में ही इसकी मृत्यु हुई थी।

मैंने पूछा—"भई, तुम्हें तो उसकी बड़ी याद आती होगी ?"

बोले—"हाँ, उसको याद करता हूँ तब सुख का अनुभव होता है। पर मैं अब अच्छा हूँ।"

इसके बाद उन्होंने मुझे अपनी जीवन-कथा सुनाई। उसका सार यह था कि पत्नी के प्रेम ने उन्हें किस प्रकार अकर्मण्य और शिथिल कर दिया उन्होंने कहा—"यह प्रेम-रस मेरे जीवन की अन्य प्रवृत्तियों को धीरे-धीरे विष दे रहा था। वह यह मानती थी कि जब मैं उसको प्रेम करता हूँ, तो मुझे उसकी बातों में अधिक से अधिक रस लेना चाहिए और जितना समय वह माँगे, मुझे अपने जीवन-कार्यों में से निकाल कर उसे देना ही चाहिए। मैं उसके साथ अपने काम-काज की कोई बात न कर सकता था, क्योंकि वह मेरे प्रश्नों में न दिलचस्पी लेती, न उन्हें समझने का यत्न ही करती थी। इसके विरुद्ध मुझे उसकी हर बात और हर प्रश्न में शामिल होने के लिए सदा तैयार रहना पड़ता था। सवेरे, नाश्ते के समय, मैं दैनिक समाचारपत्र खोलता तो उसे मेरे कार्य में उपेक्षा दिखती; उसका मुँह लटक जाता। और जब कभी मैं चुपचाप अपनी किसी समस्या पर मन-ही-मन विचार करता होता, तो वह कहती कि तुम नाराज क्यों हो और मुझसे क्यों रूठे हो ? मुझे कभी अपने लिए कुछ समय ही नहीं मिला था।"

आज यह मित्र उस बन्धन से मुक्त हो गये हैं और यद्यपि पहले की आदतों का बोझ अब भी इनके अन्तःकरण पर कुछ कम नहीं है, किन्तु अब उनकी आत्मा, धीरे-धीरे इस बोझ से बाहर निकल रही है।

एक दूसरे अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति को मैं जानता हूँ। इन्हें प्रायः विदेशों में होनेवाले अनेक सम्मेलनों में प्रतिनिधि के रूप में जाना पड़ता है; किन्तु इनकी पत्नी की मानसिक दशा बड़ी खराब है। उसके ज्ञानतन्तु बिल्कुल निर्बल हो गये हैं और उसको इसकी स्थायी बीमारी

ही लग गई है। पति की अनुपस्थिति में उसकी दशा बड़ी खरा हो जाती है, इसलिए चाहे जैसी कठिनाई हो, सदा पति के साथ जाने का उसका आग्रह रहता है। इतना ही नहीं। किसी सभा में भाषण देने जाना होता है, तो स्त्री को एक जगह रखकर जाते हैं; पर कहीं किसी मित्र से भेंट हो गई और कुछ देर लग गई, तो फिर लौटने पर वह ज्वालामुखी फूटता है कि बेचारे हक्के-बक्के हो जाते हैं। इस पर भी वह स्त्री समझती है कि इस पुरुष के जीवन पर विजय का रहस्य वह जानती है। एक बार कहीं बातचीत के सिलसिले में, उस स्त्री से मैंने कक दिया कि तुम्हारे कोई लड़की नहीं है, यह दुःख की बात है।

"लड़की !" जैसे वह बड़ी भयग्रस्त होकर बोलीं हो—"नहीं; मुझे स्वप्न में भी लड़की न चाहिए। आज इनका ( पति का ) मेरे ऊपर जो प्रेम है, कहीं उससे ज्यादा लड़की पर हो गया तो तब तो मेरा नाश ही समझो।"

इस बहिन को चार लड़के हैं और चारों को उसने अपने प्रेम के पञ्जे में ऐसा दबोच रखा है कि उनका बिल्कुल विकास नहीं हो रहा है और न पिता के प्रति उनका कुछ विशेष ममत्व है।

पत्नी के प्रेम-पाश में जो पुरुष इस प्रकार फँसे हुए हैं, उनको संसार के लिए बेकार ही समझना चाहिए। वे पंगु एवं मृतप्राय से जीवन बिता रहे हैं। प्रत्येक दिन और प्रत्येक रात इन्हें अकाल-मृत्यु की ओर ले जा रही हैं। पत्नी के जीवन-शोषक प्रेम की जोंक इनके जीवन में लग गई है और फाँसी का कार्य धीर-गति से चल रहा है। स्त्री ही इनके जीवन का मारक तख्ता है; स्त्री ही रस्सी है। इनके कान में

निरन्तर स्त्री की ही आवाज है; इनकी आँखों में रात-दिन स्त्री का ही मुख है। ऐसे पुरुष किसी साहस के काम को करने में असमर्थ रहते हैं। सारा जीवन एक विषैली, किन्तु मीठी, नींद से भर जाता है। उठते-बैठते चलते-फिरते उनको स्त्री ही दिखाई देती है। जीवन-संघर्ष में निकम्मा हो गया यह पुरुष, अपनी बेबसी में, प्रतिक्षण आत्म-घात कर रहा है।

और वह कर ही क्या सकता है! जब वह जगता है, तब देर हो चुकी होती है। इस जाल से छुटने के दो ही मार्ग हैं। या तो पुरुष स्त्री से लड़ाई करे या फिर भावी के आगे माथा टेक दे और जो हो रहा हो, उसे चलने दे! यदि वह पहला रास्ता पकड़ता है, तो सारी जिन्दगी गृह-क्लेश की एक लम्बी फिल्म बन जाती है। इसलिए अधिकाँश पुरुष दूसरा ही मार्ग पकड़ते हैं। वे भाग्य के सम्मुख चुपचाप माथा टेक देते हैं। और अपने ही जीवन द्वारा अपनी भूल की भरपाई कर देते हैं। वश करने से वश हो जाना कहीं सरल है। और ऐसे वशीभूत नर को नारी उसकी तरह, धीरे-धीरे, खाती है, जैसे विजित को विजेता धीरे-धीरे खा जाता है!

और फिर चाहे वह पहला मार्ग पकड़े या दूसरा, ऐसे पुरुषों को तो अपनी आत्मा का नाश करना ही है। क्योंकि पुरुष को घर में तो रहना ही है और घर तो, जैसा स्त्री बनाना चाहे, वैसा ही बनता है। इसलिए यदि कोई स्त्री अपने घर को अहङ्कार की वायु से भर देती है, तो पुरुष को उसी श्वासावरोधक वायु-मण्डल में साँस लेना पड़ता है।

मेरे एक कलाकार मित्र हैं। इनके गृह में आनन्द का राज्य है। मैंने इतना सुखी जीवन नहीं देखा। कारण यह है कि उनकी पत्नी ने इस बात को समझ लिया है कि पति का जीवन-कार्य ही पत्नी का असली जीवन है, इसलिए जब पति अपने जीवन-कार्य में संलग्न हो, तब पत्नी को उसका गला घोंटने वाला प्रेम दूर ही रखना चाहिए। यह स्त्री पति के जीवन-कार्य के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को धीरे-धीरे खींच लेती है। वह पति के जीवन के विकास में बाधक नहीं है; सहायक है। इच्छा होते ही पति को अपने कार्य-मन्दिर में प्रवेश करने की सुविधा एवं स्वतन्त्रता उसने दे रखी है। पुरुष को अकेले भी छोड़ना चाहिए, इस बहु-मूल्य जीवन-मंत्र को वह जानती है। जगत् में जिसको कुछ कार्य करना है, ऐसे पुरुष को प्रेम-सृष्टी से कुछ अनुकूल अन्तर रख कर जीवन के मार्ग में चलना चाहिए। अनुकूल का मतलब यह है कि इच्छा, अवकाश एवं आवश्यकता होने पर वह सहज ही प्रेम-राज्य में प्रवेश करके विश्राम ले सके और अन्तर का मतलब यह है कि साथ-साथ चलते या कार्य करते समय एक की छाती पर दूसरा न चढ़ बैठे। दोनों एक-दूसरे को उठाते हुए, विकसित करते हुए चलें; मोहाविष्ट करके एक दूसरे की शक्तियों को शिथिल और बेकार न कर दें। अपने प्रचलित अर्थ में, जीवन का सर्वस्व नहीं है; जीवन का एक अंश है। जीवन का खाद्य है, यह भी कह सकते हैं; परन्तु आवश्यकता से अधिक खाद्य विष है। स्त्री के श्यामल नयनों से निकलने वाले आँसू से कुछ जीवन का विकसा रुक नहीं सकता। पर संसार में ऐसे थोड़े ही वीर पुरुष हैं, जो स्त्री के आँसुओं के सम्मुख खड़े

हो सकें। यदि ऐसे अधिक पुरुष हों तो न केवल वे सुखी हों वरन् नारी भी उनको पाकर धन्य हो। स्त्रैण, विषयासक्त, शिथिल और दुर्बलमना पुरुष को पाकर नारी कभी सच्चे सुख का अनुभव नहीं कर सकती।

'तन जुदा मन एक', यह तो विवाहित जीवन के चन्द प्रारम्भिक दिनों की प्रमादपूर्ण मधु-यामिनी का प्रलाप है; विवाहित जीवन के आदर्श का घातक है। इसका तो मतलब यह होता है कि दो में एक मुरदा है और एक के फेफड़े श्वास लेने के अयोग्य हैं। एक का मन निर्लिप्त, आकांक्षाहीन एवं निर्जीव हो गया है।

यह तो केवल उस पुरुष का चित्र है, जो परमासक्ति का शिकार हुआ है। ठीक इसके विपरीत ऐसी अनेक नारियाँ हैं, जो पति के प्रति बिलकुल विरक्त होती हैं। इस विरक्ति के कारण सही या गलत अनेक होते हैं; पर बहुधा अतिरंजित होते हैं। जहाँ अपने स्वार्थों का प्रश्न हो, नार में नारी के प्रति प्रबल घृणा होती है। एक औसत नारी अपने पति के प्रति किसी दूसरी नारी के किसी प्रकार के आकर्षण को बर्दाश्त नहीं कर सकती। इसलिए वह या तो झगड़ालू या विरक्त बन जाती है। और भी कितने कारण हैं। ऐसी अनेक नारियों को मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ, जो पति के कार्यों में बिलकुल दिलचस्पी नहीं लेतीं। वे सदा एक दुःख का वातावरण बनाये रखती हैं। पति के मनोरंजन पर सन्देह का पहरा है। इनके पतियों को अपने संघर्षपूर्ण जीवन में उनकी कोई सहानुभूति प्राप्त नहीं है। इस विरक्ति के स्पष्ट कारण प्रायः कम होते हैं। सच तो यह है कि यह मन की एक विशेष अवस्था और जीवन के प्रति दूषित दृष्टि का परिणाम है। मेरे एक मित्र हैं। उनका

औसत पुरुष का जीवन है। सिनेमा-थियेटर का शौक है और उस श्रेणी में नहीं हैं जिसकी 'प्योरिटन' कहकर आजकल हँसी उड़ाई जाती है। 'तबीयतदार' हैं। फिर भी मैं देखता हूँ कि पति-पत्नी का जीवन सुखी एवं प्रेमपूर्ण है। पत्नी उनके जीवन के प्रति सहानुभूति एवं उदारता से देखती है और उनकी एक-एक बात पर मुँह लटकाने का अभ्यास करना उसे गवारा नहीं है। कोई वैसी बात हुई या कही गई, तो हँसकर जरा मधुर व्यंग में, उड़ा देती है और अपने काम में लग जाती है। दोनों के जीवन पर बोझ नहीं है; यद्यपि दोनों जीवन की नदी में साथ ही तैरते हुए मार्ग काट रहे हैं।

इसके विरुद्ध एक दूसरे मित्र हैं, जो अच्छे विद्वान हैं, सदाचारी हैं। छोटी-छोटी बातों में भी विवेक से काम लेते हैं। हर एक बात को सदाचार की कसौटी पर कसते हैं। किसी प्रकार का व्यसन उन्हें नहीं है और न किसी प्रकार की 'तबीयतदारी' ही उनमें है। अपनी पत्नी को सुखी रखने की आकांक्षा रखते हैं एवं उसके लिए उन्होंने त्याग भी किया है; परन्तु फिर भी जैसे अतृप्त हैं; पत्नी उनके जीवन में कोई रस नहीं लेती। एक दिन कहने लगे कि मैं इतनी बड़ी दुनिया में अकेला हूँ। शब्दों से आँसू टपक रहे थे। यह स्त्री उनके त्याग एवं उनके कष्ट की ओर ध्यान ही नहीं देती—अथवा नहीं दे सकती। अपने सारे जीवन-संघर्ष में वह अकेले हैं। उलटे छोटी-मोटी बातों को तूल देकर स्त्री भी दुखी होती है। उसमें मनोरंजन की और खुश रहने तथा दूसरों को खुश रखने की योग्यता ही नहीं। जैसे उसे दुखी रहने का रोग हो। इस 'क्रानिक' रोग के कारण पति देवता सूखते जा रहे हैं और उन्हें रक्त-क्षय

होगया है। मजा यह है कि इन लोगों को किसी प्रकार की सांसारिक कठि-नाई भी नहीं है। पति देवता की ४००)-४५०) मासिक की आय भी है।

इन बातों पर जब हम विचार करते हैं, तो मालूम होता है कि दाम्पत्य जीवन के रहस्य को न समझने के कारण ही यह सब हो रहा है। जब केवल प्यार ही प्यार का नशा होता है, तब भी जीवन सूखता जाता है; क्योंकि केवल प्रेम से ही जीवन जाग्रत एवं विकसित नहीं होता। प्रेम के साथ विवेक और कर्तव्य भी चाहिए। उसी प्रकार यदि प्रेम बिलकुल न मिले या उचित मात्रा में न मिले तो भी अधभूखे ('अण्डरफेड') की तरह जीवन की शक्तियाँ क्षीण होती जाती हैं। वस्तुतः जीवन का उत्कर्ष प्रेम के उचित उपयोग पर निर्भर है। जो नारियाँ प्रेम की भूख को उचित सतह पर रख सकती हैं, वही सुखी होती हैं और पतियों को सुखी रख सकती हैं। जो पत्नियाँ प्रेम की भूख के समय पतियों को बहुत ज्यादा खा लेने को विवश करती हैं या जो उन्हें अतृप्त और अधपेट ही उठ जाने को बाध्य करती हैं—दोनों प्रति क्षण अपने पतियों की हत्या कर रही हैं।

[ २ ]

# असभ्य बनाम सभ्य श्रीमतियाँ

"Progress has trivialized woman, and woman has trivialized civilization. She spends : Just spends."

H. G. Wells.

'प्रगति ने स्त्री को तुच्छा बना दिया है और स्त्री ने सभ्यता को तुच्छ बना दिया है। वह ख़र्च करती है, बस खर्च करती है।"

—एच जी० वेल्स

वर्तमान तमाज की दशा उस जीर्ण रोगी तरह है, जो दवाइयाँ खाते-खाते और परहेज करते-करते ऊब गया है और रोग की विकटता को न सह सकने के कारण नशा पी-पी कर अपने को भुला रखना चाहता है और जब नशा नहीं मिलता, तो जहर का प्याला पीकर रोग और रोगी दोनों को ख़तम कर देना चाहता है। उसे नशा चाहिए, भुला रखने वाला नशा चाहिए। जो चिकित्सक उसे नशीली चीज़ नहीं दे सकता, उसकी बात सुनने को वह तैयार नहीं।

जीवन के कोलाहल में जब मंजिल बहुत दूर है और शाम हो चली है, एक खीझ और प्रतिहिंसा के साथ हम मार्ग में दौड़ रहे हैं। हमारे पास इसके लिए भी वक्त नहीं कि ज़रा मार्ग का विचार कर लें। हजारों दौड़े चले जा रहे हैं; बस इतना काफी है और हम भी उधर हो लेते हैं। भीड़ का आकर्षण प्रत्येक प्राणी के लिए जबर्दस्त होता है और मनुष्य कुछ इसका अपवाद नहीं है। संख्या-बल उसके दिमाग पर भी अन्य प्राणियों की भाँति ही नशा करता है।

यद्यपि यह करीब-करीब असम्भव है, पर यदि कोई आदमी थोड़ी देर के लिए भी इस भीड़ से अलग होकर देख सके, तो उसे अनेक मनो-रंजक दृश्य दिखाई देंगे। मैं जब कभी वर्तमान सभ्यता के आवरण के नीचे से देखता हूँ और जरा गहराई में जाता हूँ, तब मुझे आजकल का कोई दृश्य इतना दिलचस्प नहीं मालूम पड़ता, जितना औरतों की यह भाग-दौड़ और शोर-गुल जिसके बारे में कहा जाता है कि संसार की सभ्यता में यह सबसे बड़ी क्रान्ति हो गई है। आज की नारी पुरुष के समान बन गई है और उसने दुनिया के हजारों प्लेटफार्मों से यह घोषणा की है कि वह पुरुष की गुलाम होकर न रहेगी और यह भी कि उसे आज मानव-सभ्यता को अपनी श्रेष्ठ देनों से विभूषित करने का मौका मिला है।

नारी के इस दावे के सामने आज कौन खड़ा होगा ? आज उसका अहङ्कार पूरे ओज पर है, इसलिए वह किसी की बात नहीं सुनेगी। उसे किसी की—और फिर पुरुष की!—सलाह की जरूरत नहीं है। वह खुद

सोचने-समझने की योग्यता और शक्ति रखती है और वह खुद अपने बारे में सोच लेगी।

ताज्जुब तो यह है कि एक बिल्कुल गलत और बेबुनियाद बात इस पर सारा झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। औरत-मर्द के इस झगड़े में तत्व की बात तब कम, पर मनोंरञ्जन की बात ज्यादा है। मानव-समाज ने कब यह कहा कि नारी पुरुष की गुलाम है और कब इस बात से इन्कार किया गया कि सभ्यता की रचना और विकास में नारी की बहुत श्रेष्ठ देन रही है और रहेगी ? कब यह बात निश्चित रूप से घोषित की गई कि नारी पुरुष से हीन है।

गुण और दोष, नारी और पुरुष दोनों में रहे हैं, और रहेंगे। नारी जैसे निर्दोष नहीं है और अपूर्ण है, वैसे ही पुरुष भी निर्दोष नहीं है और अपूर्ण है। इस अपूर्णता से पूर्णता की यात्रा में दोनों ने सहयोग किया और जब दोनों ने एक दिशा में चलने का निश्चय किया और इस निश्चय के अनुसार जीवन के मंजिल की यात्रा शुरू हुई, तब अच्छा यही था कि दोनों अपनी प्राकृतिक विशेषताओं को विकसित करते हुए चले चलें। एक-दूसरे से लड़ते हुए चलना जीवन-यात्रा में शुभ नहीं हो सकता। इसमें क्षति दोनों की है; लाभ किसी का नहीं।

जब आधुनिक सभ्य नारी प्लेटफार्म और प्रेस से घोषणा करती है कि मैं मर्द की गुलाम होकर नहीं रहूँगी, तो मैं बड़े ध्यान से और गम्भीर होकर सुनना चाहता हूँ; नहीं चाहता कि मैं हँसूँ, पर सत्य की रक्षा के लिए कहना चाहिए कि मुझे हँसी आती है। ठीक वैसे, जैसे उस मर्द को देख कर हँसी आयगी, जो दुनिया के सामने कहता फिरे

कि मैं स्त्री का गुलाम बन कर न रहूँगा। जब यह कहा जाता है, तब दोनों के मन में भय और अपनी हीनता की अनुभूति पहले से ही वर्तमान होती है। जब कोई नारी यह कहती है कि मैं मर्द की गुलाम नहीं, तो वह अक्सर अपने को मर्द का ज्यादा गुलाम साबित कर लेती है।

कहा यह जायगा कि सदा से नारी को पुरुष ने गुलाम रखा है, पर हमारा साहित्य और अतीत इसके सर्वथा विरुद्ध घोषणा करते हैं। और हम विश्व की, विशेषतः भारत की, चिन्ता-धारा में बराबर पुरुष के नारी के शिकंजे से निकलने की चेष्टा को प्रतिविम्बित पाते हैं। दर्शनशास्त्र एवं नीति में सर्वत्र पुरुष को नारी के प्रभाव से अलग होने का उपदेश मिलता है। यदि नारी गुलाम होती और उसका पुरुष पर प्रभाव न होता तो हमारी चिन्ता-धारा इस रूप में कभी न बहती। वस्तुतः नारी के रूप और मोह में अपना सर्वस्त्र बलिदान करके तन-मन से शिथिल होकर पतित होती हुई पुरुष-जाति में यह एक विद्रोह का प्रयत्न था। इस तह मानव-जाति का इतिहास कभी एक और कभी दूसरी शक्ति के प्रधान्य-लाभ करने इतिहास रहा है।

हमारी 'ट्रेजेडी' यह है कि हम इतिहास के संघर्ष से कुछ सबक नहीं लेते हैं। पर अब समय आ गया है कि हम दलदल से ऊपर निकलें और सामञ्जस्य—न कि संघर्ष—को जीवन का धर्म बनाएँ। सुख और शान्ति का मार्ग यही है।

हाँ, तो मैं यह कह रहा था कि आधुनिक सभ्य नारी के इस दावे को मैं सुनता हूँ, तो मुझमें उसकी मनोदशा के प्रति सहानुभूति का भाव

उदय होता है। यदि यह दावा चरितार्थ हो सके, तो पुरुष को चिन्तित होने का कोई कारण नहीं; उसे खुशी होगी, क्योंकि अभी यह विह्वल और उद्वेलित,हृदय पुरुष जीवन की लम्बी और कठिन कण्टकपूर्ण यात्रा में जो अपने सहयात्री का भी बहुत-सा बोझ गधे की तरह, लाद कर चल रहा है, वह हलका हो जायगा और वह भी जरा स्वस्थ होकर सांस ले सकेगा। और तब कदाचित् नारी को भी किंचित् मौन का आश्रय लेना पड़ेगा, क्योंकि चलते समय सिर के बोझ की ओर भी उसका ध्यान होगा और उसकी जिह्वा थोड़ा विश्राम पायेगी।

क्या अच्छा हो कि यह दावा पूरा हो, पर हो यह नहीं रहा है। वाग्युद्ध का नाम स्वतन्त्रता नहीं है। अपनी जिम्मेदारी उठा लेने, अपने प्रति, और अपने में दूसरों के प्रति भी, जिम्मेदारी होने का नाम स्वतन्त्रता है। आधुनिक सभ्य नारी इसे सीख सके, तो दुनिया को भी कुछ सिखा देगी।

\+ × +

पर जब-जब मेरे दिमाग में ये बातें आती हैं, मेरी आँखों के सामने दो चित्र आ जाते हैं। ये चित्र कल्पना के चित्र नहीं हैं। दिन पर दिन, महीने पर महीने और वर्ष पर बीतते गये हैं और रोज मैं इन्हें देखता रहा हूँ। यहाँ तक कि ये जीवन का एक अङ्ग ही बन गये हैं।

मैं जहाँ रहता हूँ, उससे मुश्किल से १०० कदम के फासले पर एक टूटी-सी झोंपड़ी है। किसी इञ्जीनियर ने इस जमीन की जाँच नहीं की; न किसी मिस्त्री या कारीगर का हस्तकौशल इन दीवारों पर अंकित है। जमीन इतनी नीची कि बरसात में पानी 'सेजभई घर नाऊँ'

दृश्य उपस्थित कर देता है। छत के बारे में यह भी कह सकते हैं कि वह नहीं है या जरा गम्भीर और तात्विक होकर कहें, तो यों कि है भी, नहीं भी है। एक पर एक ईंटें रख दी गई हैं और उन पर टिन के कुछ टुकड़े, बस यही घर है। इस छोटे और घर के नाम पर घर के व्यंग-से घर में, एक विवाहित जोड़ी न जाने कितने दिनों से रह रही है। ये जन्म से गरीब पैदा हुए थे और आज भी गरीब ही हैं, पर हृदय उतना गरीब नहीं है। पति-पत्नी दोनों मजदूरी करते हैं और बड़े धैर्य और बड़ी वीरता के साथ जीवन की लड़ाई लड़ रहे है। सुबह ४ बजे वह असभ्य श्रीमती उठकर काम में लग जाती है। ६ बजे तक पति-पत्नी का शौच, स्नान हो जाता है, और इतने ही समय में पत्नी दोपहर का भोजन ( यदि सभ्यता की भाषा में उसे भोजन कहा जा सके ) तैयार कर लेती है। दोनों भगवान् का नाम लेते हैं और दोपहर की रोटी कपड़े में बाँधकर ६ बजे अपने काम पर चल देते हैं। नगर घर ३-४ मील दूर है। दिन-भर काम करने के बाद दोनों ६॥-७ बजे शाम को लौटते हैं। और पत्नी भोजन बनाने में लग जाती है। दिन भर का यह काम, दोनों समय का भोजन बनाना तथा गृह-कार्य और इधर-उधर के फुटकर कार्यों को करते हुए भी यह असभ्य नारी सदा प्रसन्न और कार्य के लिए सदा प्रस्तुत रहती है। कभी दूसरों के बच्चों को सँभाल लेती है, कभी चक्की चलाने बैठ जाती है; प्रातःकाल की शुद्ध हवा, नियमित जीवन, परिश्रम और ईमानदारी ने, कठिनाइयों और प्राकृतिक विपत्तियों के बीच भी, उनका स्वास्थ्य और उनकी जवानी कायम रखी है।

यह नारी, जो कई विवाहित और अविवाहित बच्चों की माँ है और जिसको उसके विवाहित जीवन में कहने और ऊपर से दिखाई देने लायक कोई वैभव नहीं प्राप्त हुआ, जिसने नहीं जाना कि दस दिन का विश्राम कैसा होता है, उसमें जीवन की कठिनाइयों के विरुद्ध सतत हँसते हुए लड़ने का यह साहस कहाँ से आया ? इसने कठोर कमाई से रुपये सञ्चित किये और साध से लड़कियों की शादियाँ कीं, पर वह कभी अपनी दिक्कतों का रोना लेकर रोती न फिरी। उसने रोने का समय काम में लगाया और कठिनाइयों के कारण कभी उस स्थायी सहयोग के जीवन को, जिसे दाम्पत्य कहते हैं, खण्डित, विशृङ्खल और निरानन्द नहीं होने दिया।

प्रश्न होता है कि आखिर वह कौन-सी चीज़ है, जिसने जीवन में उसका ऐसा जीवन्त विश्वास क़ायम रखा है। वह क्या है, जिसने सतत कठिनाइयों के बीच भी जीवन का सत् सुरक्षित रख छोड़ा। वह चीज़ कौन-सी है, जिसे लेकर वह आँधी और तूफान के बीच जीवन की घाटियों और दर्रों से होकर बराबर चली जा रही है, जिसने दुखों में उसके सुख को टूटने न दिया और दुनिया के झकोरों के बीच भी दिल का दिया बुझने नहीं दिया है। यह प्रबल आत्म-विश्वास, यह अपने प्रति ईमानदारी, यह अपने सत् में केन्द्रित होकर चलना, यह दाम्पत्य जीवन की न केवल शारीरिक और नैतिक वरन् आर्थिक जिम्मेदारियों में भी अपने हिस्से से ज्यादा देने का हौसला ! यह असभ्य नारी, केवल अपने को देखकर, अपने विश्वास में, सती की निष्ठा की तरह दृढ़ होकर, चल रही है। उसके यहाँ देना ही देना है। वह दानमयी होकर अपने में परिपूर्ण

सी हो उठी है। उसके पास कोई अभियोग नहीं, कोई शिकायत नहीं—और है, तो भी यह जीवन की तह के ऊपर रह जाती है, विष अन्दर जाने नहीं पाता।

मैंने, अपने मन में, बार-बार पूछा है, और आज दुनिया से भी पूछता हूँ कि कौन इस नारी का अपमान करेगा ? किस पुरुष की छाती में वह दुस्साहस है, जो इसे गुलाम बनायेगा ? कौन सा पुरुष इन नारी के चरणों में भक्ति और श्रद्धा से झुक न जायगा ? कौन उसे दासी कहने का यत्न करेगा ?

आज, इस बुढ़ौती में भी इस नारी में दाम्पत्य के आरम्भ का उत्साह है, वही संकोच है, वही श्रद्धा और स्फूर्ति है।

वह किस पुरुष की दासी है ? वह किस पुरुष से हीन है ? वह जीवन-यात्रा में पति की सच्ची सहधर्मिणी है। उसकी स्थिति अपने बलपर पाई हुई स्थिति है। वह अपने कर्तव्य के लिए पुरुष की ओर नहीं देखती, अपनी ओर देखती है। उसने जीवन का बोझ उठा लिया है और पुरुष के सामने नारीत्व की ममता और मातृत्व का गौरव लेकर आई है।

ऐसी नारी को बेचारा पुरुष क्या देगा ? और किस विरते पर उसे गुलाम बनायेगा ?

मानता हूँ कि उसे अपने अधिकारों की व्याख्या करना नहीं आया, यह भी मानता हूँ कि उसने नारी का दावा कभी प्लेटफार्म से घोषित नहीं किया और शायद समता के वाग्युद्ध का स्वाद उसने कभी नहीं लिया। यह भी मानता हूँ कि वह सभ्यता के आधुनिक उपकरणों से अन-

जान है—अखबार उसने नहीं पढ़े, घर को बिजली की बत्तियों से सुशोभित नहीं किया, रेडियो का नाम भी उसके कान तक नहीं पहुँचा और न वह शृङ्गार और कटाक्ष की आधुनिक कलाओं से परिचित है, उसकी अंगुलियों में हमारे कवियों को कमल की पंखुरियाँ न मिलेंगी और न नयनों में खंजन फुदकते होंगे। समान नीति के आधुनिक सिद्धान्तों और ग्रन्थों पर वह बहस नहीं कर सकती और न नारी के सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के आन्दोलन के इतिहास के बारे में ही वह कुछ जानती है। फिर भी वह असभ्य नारी अपनी स्वतन्त्रता और गौरव के लिए किसी की सहानुभूति की अपेक्षा नहीं रखती। वह प्रतिक्षण स्वतन्त्र है और जीवन के प्रत्येक दिवस उसने अपने परिश्रम और अपनी ज़िम्मेदारी से अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखी है। किसी कीमत पर ऐसी नारी को उसका पति खो नहीं सकता। इसमें चिरन्तन नारी को मैं देखता हूँ, जो अपने दान, अपने उत्सर्ग और अपने श्रम तथा दायित्व के कारण न केवल पुरुष के बराबर है, वरन् उससे ऊँची है। इसमें नारी का उज्ज्वल रूप है, जो पुरुष को जन्म देने के गौरव से गौरवान्वित है। अतः जो पुरुष की बराबरी का दावा क्यों करेगी जब वह, माता होने के कारण, पुरुष से कहीं श्रेष्ठ है।

दूसरा चित्र ज्यादा रंगीन, अतः आकर्षण भी, है।

सुन्दर-सा बँगला है। क्यूबिज्म के अनुसार बने आधुनिकतम फर्नीचर से सजा हुआ। दरवाज़ों और खिड़कियों पर परदे पड़े हैं, जिन पर सुन्दर काम होरहा है। रात को जब बिजली की बत्तियों से बँगला जगमग-जगमग होता है तो एक परिस्तान-सा लगता है। दीवारों

पर बढ़िया आयल पेंटिंग हैं। फ़र्श पर कीमती ईरानी कालीन बिछे हैं। अप-टु-डेट स्नानागार है। भोजनागार में भोजन को सुरक्षित और ताज़ा रखनेवाली आलमारियाँ लगी हैं। बँगले में वातावरण के तापमान को नियन्त्रित करने वाला यन्त्र—'एयर कंडीशनिंग प्लाण्ट' लगा है। 'स्टडी' में करीने से ताजी प्रकाशित हुई पुस्तकें सजी हैं। और पीतल के बड़े-बड़े गमलों में लगे हुए तमाल के पौधे प्रकृति को कृत्रिमता का जामा पहना कर कमरे के अन्दर खींच लाये हैं।

इस बँगले में एक जोड़ी रहती है—सभ्यता और संस्कृति में पले हुए पति-पत्नी। बच्चा नहीं है, शायद बच्चों के लिए यह बँगला उपयुक्त नहीं या इन श्रीमती जी के शरीर से जन्म लेने योग्य पुण्य ही किसी बच्चे का नहीं। पति एम० ए० आक्सन और एक ऊँचे सरकारी अधिकारी हैं। १७००) मासिक वेतन और लगभग ४५०) भत्ता मिलता है। पत्नी भी एम० ए० हैं, अंग्रेजी यों बोलती हैं जैसे उनकी मातृभाषा हो। कदाचित् अपनी मातृभाषा यों न बोल सकती हों। संस्कृति के प्रत्येक रंग में रँगी हुई हैं। बातचीत और सलीका में कौन उन्हें पायेगा। सुन्दर लेखिका भी हैं और उससे अच्छी बोलने वाली। प्लेटफार्म पर उनकी वक्तृता कोयल की कूक-सी लगती है। रूप-रानी हैं और हमारे कवि-बन्धु यहाँ वर्णन की बहुतेरी सामग्री पा जायँगे। यहाँ कमल, चन्द्र, नागिन और कदली सब एकत्र हैं। दोनों ने प्रेम की एक लम्बी प्रतीक्षा के बाद, राज़ी से एक दूसरे को चुना था और सिविल मैरेज ऐक्ट के अनुसार दोनों का विवाह हुआ। दाम्पत्य जीवन विश्वास और श्रद्धा की जगह सन्देह और संरक्षण के साथ प्रारम्भ हुआ।

साधारण दर्शक इन्हें देखकर कहेगा कि क्या अच्छी जोड़ी है और भगवान् ने इन्हें सब कुछ—रूप, धन, विद्या—दिया है, जो दिया जा सकता है।

पर मैंने वर्षों तक प्रतिदिन इन्हें बहुत नज़दीक से देखा है। मैंने जीवन की बाहरी सतह को तोड़कर अन्दर भी प्रवेश किया और वहाँ उनका रूप देखा है। जीवन बड़ी रंगीनी के साथ शुरू हुआ था। प्रेम के सपनों से जिन्दगी हलकी थी। पर यह सब ऊपर ही ऊपर था। श्रीमती जी बहुत शीघ्र 'सोशल' हो गईं। चापलूसों और स्वार्थियों ने उन्हें चङ्ग पर चढ़ाया। किसी को नष्ट करने के लिए उसके अहङ्कार को 'पम्प' करने (बढ़ाने) से सरल और रामबाण दूसरा नुस्खा नहीं। धीरे-धीरे श्रीमती जी नारी-स्वतन्त्रता आन्दोलन की नेत्री बन गईं। कोई बुरी बात न थी। समाज की सेवा होती थी। फिर क्लबों का शौक लगा। पति घर आते तो कोई स्वागत करने वाला नहीं। घर गृहणी के द्वारा नहीं, नौकरों के सहारे चलता था।

स्नेह में केन्द्रीकरण और आत्म-दान होता है। वह अपने को देता हुआ, लुटाता हुआ, चलता है। उसमें संरक्षण और सन्देह की गुञ्जाइश नहीं होती। यहाँ आत्म-प्रसार की, वाहवाही की और नैतिक नहीं कानूनी स्वतन्त्रता की भावना बढ़ रही थी। पत्नी पति की गुलाम क्यों रहे? कौन कहता है, रहे पर अपने नियन्त्रण में तो रहे। धीरे-धीरे दिल दूर होते गये और आज हालत यह है कि इस बँगले में, उसकी चमक-दमक के नीचे, दिलों की प्यास और कराह के सिवा और कुछ नहीं है। पति देव झूठी 'प्रेस्टीज' या मर्यादा के भय से तलाक

नहीं देते हैं और सभ्य श्रीमती जी इस मनःस्थिति का पूरा फ़ायदा उठा रही हैं। उनकी आर्थिक जरूरतें दिन-दिन बढ़ती जाती हैं। पार्टियाँ होती हैं, 'पिकनिक' (सैर-सपाटे) होते हैं। हास्य और अट्टहास की गूँज से बँगला ध्वनित होता रहता है। सब काम कायदे से चलते हैं। पतिदेव इन कार्यों में शरीक भी होते हैं और ऊपर से पूरी तरह भाग लेने की कोशिश करते हैं। २२००) की आय के पश्चात् भी पति पर ऋण होता जाता है और वह फ़ुर्सत के वक्त या आधी रात को, थोड़ा-थोड़ा करके अंग्रेजी पत्रिकाओं के लिए लिखते और कभी-कभी कालेज के विद्यार्थियों के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार करते हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि इस अत्यधिक मानसिक बोझ और चिन्ता के कारण पतिदेव भयंकर मधुमेह से पीड़ित हैं और क्षण-क्षण उनके रक्तकण सूख रहे हैं और मृत्यु अप्राकृतिक गति से उनकी तरफ बढ़ती आ रही है। पत्नी को इसका पता है और यह भी पता है कि यह तिल-तिल करके पति जो आत्म-हत्या कर रहे हैं उसका परिणाम क्या होगा, पर सभ्यता भविष्य की चिन्ताओं से चिन्तित क्यों होगी? इस सर्वनाश के बीच पाउडर पोमेड, रूज और ब्यूटी कल्चर के क्रम से सौन्दर्य की धार को शान दे-देकर बराबर तेज रखने का प्रयत्न चल रहा है!

मेरे दिल में बार-बार इस दृश्य को देखकर धुँआ उठा है और कभी-कभी यह दृश्य मुझे इतना गर्हित—'रिवोल्टिंग'—लगता कि मैं कुछ दिनों के लिए, और कोई कारण न होते हुए, दूसरे नगर को चला जाता। बार-बार मैंने अपने दिल में पूछा है कि क्या यह नारी अपनी सारी शिक्षा के साथ भी स्वतन्त्रता का दावा कर सकती है?

उसके पास ऐसी कौन सी चीज़ है, जो जीवन की दौड़ में उसे गिरने न देगी?—जो उसे अपने पैरों पर खड़ा रहने देगी? वह किस शक्ति को लेकर अपने पुरुष के सामने सारी सच्चाई के साथ खड़ी होगी? और अपने किस गुण के कारण वह पति के निकट अपने को अनिवार्य, या आवश्यक ही, सिद्ध कर सकती है? क्या उसे दूर करके पति उसकी उपस्थिति की अपेक्षा कुछ अधिक अभाव का अनुभव करेगा? क्या उसे अलग होकर पति का बोझ कम न हो जायगा? उसने जीवन की नैतिक, मानसिक, आर्थिक और आध्यात्मिक ज़िम्मेदारियों में क्या हिस्सा लिया कि उसका दर्पपूर्ण दावा पुरुष व्यंग्य और हास्य के साथ नहीं, वरन् गम्भीरता और सम्मान के साथ सुनेगा? अपने सारे-रंग (मेक-अप) के लिए वह प्रतिक्षण पुरुष या पति पर निर्भर है। यह स्थिति पति की दया पर जी रही स्थिति है। और क्या इसके मूल में सिवा बनावटी और बलात् शरीर-रंजन के जीवन का और भी कोई गहरा तन्तु है?

माना, वह सभ्य नारी प्लेटफार्मों पर चहक लेगी। पत्रिकाओं में चमकेगी, पार्टियों में गूँजेगी। माना, वह अपनी आधुनिक पढ़ाई के बल पर पुरुषों के मुँह बन्द कर देगी और यह मानने में मुझे क्या एतराज़ हो सकता है कि वह आधुनिक मित्र-मण्डलियों की शोभा होगी और तर्कों से सिद्ध कर देगी कि वह पुरुष से श्रेष्ठ है और उसकी गुलाम होकर न रहेगी।

यदि मानव-हृदय की गहराई से सम्बन्ध रखने वाली समस्याएँ तर्कों से सिद्ध की जा सकतीं, तो हम इस बहिन के चरणों में मस्तक रखकर उसकी पूजा करते और कहते कि देवी, तुम हमारी आराध्य हो और हम

तुम्हारी समता किस बूते पर कर सकते हैं ? किन्तु मुँह पर हमारा वश है, हम जो चाहें कह दें और चाहे जितने उत्कृष्ट विशेषणों 'सुपरलेटिव्स'—का प्रयोग करें, किन्तु हृदय इस भाषा को पहचानता नहीं। वहाँ अधिकार किसी और अधिक शक्तिशाली और सूक्ष्म भाषा से प्राप्त होता है।

माना, यह नारी कौंसिलों में जाकर अपनी अद्भुत वाग्धारा से लोगों को चकित कर देगी और उसके फोटो छाप कर पत्र-पत्रिकाएँ अपने को धन्य मानेंगी। माना, वह लक्ष-लक्ष असभ्य नारियों को प्रकाश और सभ्यता का सन्देश देने का दावा करेंगी—इस दावे पर उसका आभार माना जायगा और तालियाँ पीटी जायँगी। पर क्या मैं पूछूँ कि वह अपने हृदय की गहराई में सचमुच अपने को स्वतन्त्र होने योग्य समझती है और क्या स्वतन्त्र होकर एक क्षण टिकने की शक्ति उसमें है ? और क्या उसमें, अन्दर, कोई ऐसी ठोस चीज़ थी, जो जीवन के धक्कों को सँभाल लेती और उसपर चोट और आँच न आने देती ? आखिर किस शक्ति से वह दुनिया में बराबर अपने को सक्षम रखेगी—'मेनटेन' करेगी ?

ये दो चित्र, पहेली-से, मेरे जीवन से चिपटे हुए हैं। मैं इनका हल सुझाने का दावा नहीं करता, पर इतना जानता हूँ कि आत्मदान, न कि ग्रहण, शक्ति और आत्मानुभव का मार्ग है।

[ ३ ]

# हमारी अगणित सधवा विधवाएँ!

सैकड़ों वर्षों की गुलामी ने हमारा सत्व चूस लिया है। इसने हमें नैतिक दृष्टि से दीवालिया बना दिया है। ग़रीबी, भूख और बेकारी ने हम में भयङ्कर खुदग़र्जी पैदा कर दी है और, इस राजनीतिक एवं मानसिक पराधीनता के साथ आधुनिक सभ्यता की मार ने हमें बेकाम कर रखा। इसने हमें बाहर की ओर आकर्षित किया, पर अन्तर को टटोलने और देखने की फ़ुर्सत न दी, इसने हमें लक-दक, शान-शौकत और विलासिता की ओर बढ़ाया, पर दिल को ज़हर पिला दिया।

आज हमारा सारा समाज अस्त-व्यस्त है। आज व्यक्ति त्रस्त, पीड़ित, दबा हुआ है। समाज अधोमुखी है। जीवन निरानन्द है। विद्रोह है, शान्ति नहीं है। हमारे चारों ओर आग की ज्वाला है। हम इधर देखते हैं, उधर देखते हैं, पर कहीं छाया और शीतलता नहीं। ऐसे समय निराश और त्रस्त अपना हृदय टटोलते हैं, अपने अन्दर देखते हैं, तो वहाँ भी शान्ति का झरना नहीं। सर्वत्र आग है, सर्वत्र जलन है, सर्वत्र अशान्ति है।

प्लेटफार्म हैं, और पत्र हैं। सब चल रहे हैं, पर एक नाटक-सा मालूम होता है। सभाएँ होती हैं, जलूस निकलते हैं, प्रस्ताव पास होते हैं, विरोध किया जाता है। सब दौड़ रहे हैं पर मंज़िल कहाँ है? हम जा किधर रहे हैं? हमारा जहाज जब तरङ्गों पर उछल रहा है, तब हमारा ध्रुवतारा हमारी आँखों से ओझल है।

इतने आन्दोलन हो रहे हैं—एक से एक आवश्यक और ज़ोरदार पर मानव अशान्त, अतृप्त, प्यासा-सा सर्वत्र छटपटा रहा है। इतने आन्दोलन हो रहे हैं पर आश्चर्य है कि गृह-जीवन,—जो हमारे थके, निराश, संघर्षमय जीवन की विशाल मरुभूमि में एक हरित भूमिखण्ड, एक 'ओसिस' है,—अछूता है। कोई इसके पुनर्निर्माण का प्रश्न नहीं उठाता; कोई जैसे उसे गम्भीरता के साथ लेता ही नहीं। हमारे गृह, जहाँ स्नेह, प्रेम, श्रद्धा के दीपक जलते थे,—आज अविश्वास, सन्देह कलह और निराशा के अन्धकार में डूब रहे हैं।

कहा यह जायगा कि संसार में नारी तो अत्यन्त सजह होकर उठी है। आज उसका तेजस्वी स्वर वातावरण में व्याप्त है। इतना बड़ा आन्दोलन उठा हुआ है, और तुम कहते हो, गृह-जीवन के सम्बन्ध में कुछ नहीं हो रहा है। यह बयान झूठा और मक्कारी से भरा हुआ है। नारी को उठाने और तेजस्वी बनाने की जगह हमने उसे अपने सार्वजनिक जीवन के मनोरंजन की सामग्री बना दिया है; हम उसकी वाचालता के तमाशाई हैं; हमने उसे इस उपवन में तितलियों की तरह छोड़ दिया है, और उसके फुदकने पर आनन्दित हैं। हमने उसके निरानन्द जीवन से दिल्लगी की है। जब हमें उसे ज़रा सुखी

बनाना था, तब अधिकार की तृषा जगाकर हमने उसका ध्यान असलियत की ओर से हटा दिया है।

इसका कारण है। हम स्वयं किसी प्रकार की वफ़ादारी के बन्धन में बँधना नहीं चाहते। हमें स्वयं बाहर की गुलकारियाँ लुभाती हैं। हमारे दिलों में अमृत पीने का हौसला नहीं है; शराब पीने की लालसा जग गई है। अब हमें नारियाँ नहीं, गृहणियाँ नहीं, रमणियाँ चाहिएँ, मधुबालाएँ चाहिएँ।

जब समाज में पुरुष कुछ ऐसा रस-लोभी, कुछ ऐसा अनियन्त्रित—बाहर-बाहर को देखनेवाला, रूप तक ही जिसकी दृष्टि जाती है—हो रहा है, जब दिलों की कड़ियाँ तोड़ दी गई हैं, और प्रेम का सौदा होने लगा है, तब कोई आश्चर्य नहीं कि लाखों नारियों का जीवन निरानन्द हो गया है। हिन्दू नारी, इस सौदे में, सबसे घाटे में रही है क्योंकि वह स्वभावतः अन्तर्मुखी रहती चली आई है। आज लाखों हिन्दू नारियों के दिलों में कालरात्रि का अन्धकार और ओठों पर मृत्यु की प्रार्थना है। यदि वे मर सकतीं, तो बिना दुनिया को कुछ बताये, दिल की दिल में लिये, दुनिया से चली जातीं। पर अवस्था कुछ ऐसी है कि उन्हें न मरने की स्वाधीनता है, न जीने की आज़ादी।

हिन्दू विधवा ? एक खोई और भूली हुई स्त्री—जीवन के इकले मार्ग पर साधनहीन मुसाफिर की तरह चलने वाली। उसका जो कुछ था, खो गया है, और वह जानती है कि अब वह न आयेगा। यह एक महान् दुःख है, पर यह धीरज भी है, यह अवलम्ब भी है। जहाँ आशा नहीं है वहाँ आग्रह भी नहीं है, और दुःख भी वैसा असह्य नहीं है।

वह अपनी स्थिति जानती है, और दुनिया भी उसकी स्थिति जानती है। वह संसार के विस्तृत राजमार्ग पर अकेली खड़ी है। आज उसके सब बन्धन टूट गये हैं। वह चाहे जहाँ जाय, कोई रोक नहीं सकता। वह अपनी स्वामिनी है।

पर वह सधवा, जो पति द्वारा उपेक्षित और परित्यक्त है? कैसी है वह सधवा? एक बेज़बान प्राणी, जिसके दिल का दिया बुझ गया है, जिसका मानस भूखा है, पर साँकलों से बँधा है, जिसके प्राणों में घाव हैं, पर जिनकी चर्चा वह कर नहीं सकती, जिसके दिल में नित्य वृश्चिक-दंशन की अनुभूति है, जिसका दिल रोता है, पर आँखों पर हँसी रखनी पड़ती है। यह अपने मरे हुए और टूटे दिल के साथ गृहस्थी का भयानक बोझ लेकर चलने वाली स्त्री! इस पर शत-शत विधवाएँ निछावर हैं! जब विधवा के पैर खुले हुए हैं, तब इसके पाँवों में साँकल है, जब विधवा अपनी स्वामिनी है, तब इसका जीवन बिका हुआ है। एक प्राणी, जिसके दिल के पंख काट लिये गये हैं, और जिससे उसके एक ही मानसिक शक्ति के स्रोत को, पति-स्नेह की जलभरी क्यारी को, काट दिया गया है—ऐसी बेबस, बेदम, बदहवास, पति से परित्यक्त और संसार की सहानुभूति से हीन इस नारी को कितनों ने देखा है? नहीं, देखते तो बहुत हैं, प्रत्येक गली में ऐसी नारियाँ हैं, पर कितने उसकी समस्या सुलझाने को आतुर हैं?

और, इनकी अवस्था कितनी भयानक है? इनकी समस्या कितनी कठिन है? विधवाओं की गणना की जा सकती है, उनके लिए आन्दोलन किया जा सकता है। उनकी बड़ी संख्या को लेकर समाज के

प्लेटफार्म आज भी कम्पित हैं। कानून ने उनकी अनेक बाधाएँ दूर कर दी हैं; समाज उनके नाम पर रो भी सकता है। पर उस सधवा का, जो व्यावहारिक जीवन के प्रत्येक अर्थ में विधवा है, क्या होगा? उसकी गणना कैसे होगी? उसकी महान् संख्या पर समाज के आँसू कैसे निकलेंगे? उसकी कौन सुनेगा, और कौन उनकी समस्या को सुलझाएगा?—इस रूप में कि जो कुछ उनका संसार की दृष्टि में है, उन्हें मिल जाय, और इस अर्थ में कि वे एक सुन्दर, सुव्यवस्थित और आनन्दपूर्ण गृह में गृहणी की उचित मर्यादा और उचित ज़िम्मेदारी प्राप्त कर सकें।

आज समाज की प्रत्येक श्रेणी में ऐसा सूना जीवन लेकर अनेक नारियाँ चल रही हैं। शिक्षित और सभ्यता के अभिमानी समाज में उनकी संख्या अशिक्षित से कम नहीं, ज्यादा है। जो लोग समाज-सुधारक, कार्य-कर्त्ता, नेता, लेखक, सम्पादक, कवि इत्यादि लोक-हितकर कार्यों अथवा पेशों में लगे हैं, वे भी इस रोग से अछूते नहीं हैं। और, इसकी जो प्रतिक्रिया हो रही है, अत्यन्त भयानक है। अतृप्त, निराश एवं बदहवास नारी समाज-सुख के मूल, गृह-जीवन, पर प्रहार करने को उद्यत है; और यह स्वाभाविक है। तृप्त गृह-जीवन समाज की सुव्यवस्था एवं विकास का सर्वोत्तम सहायक है। अतृप्त गृह-जीवन समाज में अशान्ति एवं विद्रोह का बीज है। अनेक बार एक छोटी-सी घरेलू घटना सम्पूर्ण समाज पर असर डालती है। मैं ऐसी स्त्रियों को जानता हूँ, जो आज भारतीय राजनीति में अत्यन्त उग्र विचार लेकर आई हैं, और इसका कारण उनका दुःखपूर्ण, निराशजनक एवं अतृप्त

दाम्पत्य जीवन है। पहले उनके ऐसे विचार न थे, पर ज्यों-ज्यों गृह-जीवन विषाक्त, कठोर, नीरस होता गया, उनके दृष्टिकोण में एक तीव्रता, एक क्षोभ, एक खीझ आती गई।

मैं कुछ उदाहरण दूँगा। एक सुशिक्षित नारी। समाज-सेवा एवं नारी-जागरण के कार्य में उन्होंने नेतृत्व किया है। साहित्य एवं समाज के विविध कार्यों में रस लेती हैं। उनके पति एक विख्यात कवि और कलाविद्। कई वर्षों का सुखपूर्ण जीवन। पर बाद में गृह-जीवन का सामञ्जस्य टूट जाता है। बन्धन शिथिल होते हैं, और अन्त में टूट जाते हैं। जो काम पत्नी के ओठों की एक मुस्कराहट से हो जाता था, अब आँसुओं से नहीं होता। प्रेम और स्नेह का स्थान घृणा और चिड़-चिड़ापन ले लेते हैं; पति खीझ से पशु बन जाता है; स्त्री को मारता है; शराब पीता है; न जाने क्या-क्या करता है। कौन जाने दोष किसका था, और कितना था, पर अन्त में दोनों अलग हो गये। इतना ही नहीं कि पति-पत्नी के सम्बन्ध टूट गये हैं वरं दोनों का समाज के साथ जो सुन्दर सम्बन्ध था, उस पर भी ठेस लगी है। पत्नी समाज में विद्रोही उपकरणों को जगा रहा है, उधर पति से साहित्य एवं समाज को जो श्रेष्ठ दान मिल रहा था, उसका स्रोत अवरुद्ध हो गया है। अब यदि वह कुछ लिखते हैं तो उनकी रचनाओं में पीड़ा, कसक, छटपटाहट और इनसे होनेवाली प्रतिक्रिया की गहरी छाप रहती है।

पर यह नारी के दुःखों के लिहाज़ से एक बहुत मामूली उदाहरण है, क्योंकि इस मामले में शादी का रूप ऐसा था कि दोनों अलग हो सकते थे, और दोनों की समाज में स्वतन्त्र मर्यादा और स्थिति थी।

मैं एक लड़की को जानता हूँ। विहार प्रान्त की हैं, और काफ़ी अच्छे घराने की। पढ़ी-लिखी भी है। समाज-सेवा का कार्य करने की ओर उसकी बड़ी रुचि थी; उसके स्वभाव में बड़ी तेजस्विता थी। पुरुषों के प्रति एक खीझ और क्रोध का भाव भी उसमें था। मैंने इस लड़की के हृदय में स्नेह और सामञ्जस्य के भाव उत्पन्न करने की चेष्टा की, और पुरुषों के सम्बन्ध में जो अतिरेक उसमें था, उसे दूर भी किया। मुझे इस लड़की से बड़ी आशा थी, पर माता-पिता ने उसकी इच्छा की परवा न की। फलतः उसका जीवन नष्ट हो गया। एक पत्र में वह लिखती है—

"अशान्ति की आग में जलते हुए भी आपके पत्र को पढ़कर मैंने शान्ति की एक साँस ली। कितना धैर्य, कितनी उच्चता पत्र की उन लाइनों में भरी है मेरे भाई! और यही तो आदर्श, महानता, है, किन्तु क्या सभी के हृदय में इतना धैर्य अँट सकता है?......परिस्थिति आज-कल मुझे इतना बेचैन बनाये हुए है कि देर तक एक विषय पर सोचना भी असंभव हो गया है। जीवन एक भार हो उठा है। भविष्य की ओर देखने से सिवा अँधेरे के कुछ दिखाई नहीं पड़ता है।......पुरुष-जाति के प्रति विद्रोह के भाव आज से नहीं, कुमारी अवस्था से मुझमें भरे हैं, जिसे आप खूब अच्छी तरह जानते हैं। जब मैंने अपने को उस पुरुष-जाति के चंगुल में बुरी तरह जकड़ा हुआ पाया, तो मौन धारण कर लिया; सारी चिन्ताओं को छोड़ दिया। अपने को मुरदा-समान समझ मूक हो गई, और उसी पुरुष नामधारी जीव के हाथ में अपने को सौंप दिया। उसी दिन, उसी समय मैंने समझ लिया

था कि मेरी ज़िन्दगी बर्बाद हो गई; मेरी आशाओं और अरमानों का खून हो गया। लेकिन फिर भी ख्याल था कि जीवन के दिन हौसलों के साथ नहीं, तो किसी प्रकार बीत ही जायँगे। किन्तु वह आशा भी नष्ट हो गई। अब मैं बुरी तरह सताई जा रही हूँ। सहने की शक्ति-भर मैंने सहा किन्तु अब तो उसका प्रतीकार किये बिना रहा नहीं जाता, लेकिन किस तरह से, यह समझ में नहीं आता।......मेरा जीवन स्रोत किधर से किधर बह गया; मैं क्या से क्या हो गई! सोचती हूँ, फिर कभी मैं वैसी हो सकती हूँ, या फिर कभी मेरे इस गले हुए हृदय में आनन्द की लहरें उठ सकती हैं, पर यह असम्भव प्रतीत होता है। मैं उपाय-हीन हूँ। मैं चाहती हूँ, इन जंजालों को छोड़ किसी ऐसी जगह पहुंच जाऊँ, जहाँ शान्ति के साथ जीवन के इने-गिने दिन व्यतीत कर दूँ। किन्तु वैसी जगह कहाँ है?......"

एक दूसरे पत्र में अपने दुखी जीवन के कारणों का उल्लेख करती हुई वह लिखती है—

"आपने मेरी अशान्ति का कारण पूछा है। क्या कारण बताऊँ? हिन्दुस्तान में इस पुरानी वैवाहित प्रथा के कारण कितने ही घर बर्बाद हो गये। कितने लहलहाते हुए हृदय नष्ट हो गये; हृदयों में नवीन आशा एवं उत्साह लेकर चलने वाले युवक-युवतियों की ज़िन्दगी बर्बाद हो गई। ये मनोनुकूल परिस्थिति पाते, तो न जाने देश और समाज की कितनी भलाई होती। कितनों ने इनके विरुद्ध आवाज़ उठाई, लेकिन वह नक्कारखाने से तूती की आवाज़ की तरह व्यर्थ हुई। मेरी आँखों के सामने इसके कई जीते-जागते उदाहरण हैं। औरों की बातें जाने

दीजिए, इसका ज्वलन्त प्रमाण मैं ही हूँ।

"हमारे माता-पिता अपनी सन्तानों की इच्छा-अनिच्छा का ख्याल न रखकर, धन-दौलत कुल मर्यादा देखकर ही उन्हें विवाह-जंगल में फँसा देते हैं।......मेरे साथ भी यही हुआ। मैंने हृदय में शक्ति-संचय करके अपने विवाह के समय अपनी अनिच्छा बताई थी, किन्तु इससे मेरे विरुद्ध बड़ा कोलाहल पैदा हुआ, यद्यपि माता-पिता ने अपनी समझ में कोई बुरा काम नहीं किया। उनके देखने में अमीर जमींदार के लाडले, सुन्दर, एण्ट्रेंस फेल लड़के के साथ सम्बन्ध करना अगले जीवन को सुखी बनाने के लिए काफी था। 'विशेष पढ़े-लिखे नहीं हैं तो क्या; कुछ कमी थोड़े हैं। कमाना-धमाना है नहीं; अपना काम देखने के लिए काफी है।' वास्तव में इस दृष्टि से यह सम्बन्ध कुछ बुरा न था। फिर कौन-सी समस्या आ पड़ी, जिसके कारण मैं इतनी व्यथित हूँ? बात यह है कि मेरे माता-पिता ने मेरी खुशी और खाहिश या उनकी ही रुचि देखने व समझने की चेष्टा नहीं की। खैर, शादी के बाद मैंने अपने एकदम नौकर कर लिया था। मैं पराधीन-जाति, दूसरे के हाथ की कठपुतली, कर ही क्या सकती थी? अपने को समझा लिया था कि—

हमहुँ कबह अब ठकुर-सुहाती ;
नाहिं त मौन रहब दिन राती।

"मेरी ओर से किसी को कोई शिकायत का मौका न मिला। मैं वह चंचल लड़की एक अल्प-भाषिणि गम्भीर नारी बन गई। लेकिन आज मैं बड़ी डाँवाडोल परिस्थिति में हूँ। यह भी बताती हूँ।

"मेरे पति महाशय परले सिरे के व्यसनी, धन के मद में अन्धे और मनमानी करने वाले हैं। कुछ दिन तक तो बड़े भले बने रहे, मेरी बड़ी कद्र करते रहे, और उधर टट्टी की ओट में शिकार भी खेलते रहे। खैर, मेरा मंसूबा तो चौपट हो ही चुका था। उनकी बातें सुनकर भी मुझे कुछ विशेष दुःख नहीं होता था। लेकिन पिता (ससुर) के मर जाने के बाद वह खूब मनमानी करने लगे। मेरे पिता से न देखा गया। किसी प्रकार बाजदावा लिखवाकर रजिस्ट्री करवा ली, ताकि भविष्य में भीख माँगने की नौबत न आवे। अब रुपयों की तंगी पड़ी, क्योंकि रोज सौ-दो-सौ खर्चने को कहाँ से मिलें? अब मुझे भी तंग करने लगे। आजिज आकर मेरे पास जो कुछ रुपया-पैसा, गहना वगैरा था, मैंने दे दिया। फिर भी उनकी भूख शान्त नहीं होती। मुझे दिन-रात तंग करते हैं। कहते हैं,—'अगर तुम वाकई तंग आ गई, तो क्यों नहीं माता पिता से कह कर उसे कैंसिल करवा देती?' मैं माता-पिता के पैरों पड़ती हूँ कि उसे कैंसिल करवा दो, पर वे मेरी नहीं सुनते। उधर माता पिता नहीं सुनते हैं, इधर मैं इनसे हलाल हो रही हूँ। अब मैं क्या करूँ?...... मैं वास्तव में बहुत तंग आ गई हूँ।......मुझे अब इस कोलाहलमय, अशान्त जीवन से घृणा हो गई है। मुझे धन-दौलत की ख्वाहिश नहीं। माता-पिला को लाख समझाती हूँ, पर वे नहीं समझते। कहते हैं, मैं अपने जीते जी तुझे राह की भिखारिणी नहीं बनने दूँगा। अपनी पहले की गलती वे महसूस करते हैं, लेकिन अब महसूस करने से क्या होगा?"

यह पत्र अपने-आप बोलता है। ऐसा नहीं कि इसमें प्रकट होने

वाला दृष्टिकोण सब सही ही है। इच्छाकृत शादियाँ कुछ कम असफल नहीं होतीं पर तब नैतिक जिम्मेदारी का बोझ इस सीमा तक समाज पर नहीं रह जाता। इसके पहले जिस असफल दाम्पत्य जीवन का उल्लेख किया गया है, वह इच्छा-कृत था।

कुछ दिन पहले दिल्ली के 'अर्जुन' में एक दुःखिनी हिन्दू सधवा ने अपना हाल छपवाया था। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"आज मैं पति-द्वारा त्यागी हुई दुखिया हूँ···परन्तु मैं सदा ऐसी नहीं रही। मैंने भी कभी सुख के दिन देखे हैं। एक समय अपने माता-पिता की लाड़ली पुत्री और पति की प्यारी पत्नी रही हूँ। अब इस दुर्दशा को कैसे पहुँची, यह दुःख-गाथा सुनाने बैठी हूँ।······मेरा जन्म युक्तप्रान्त के एक प्रसिद्ध नगर में, उच्च ब्राह्मण-कुल में, हुआ था।······माता-पिता की एकलौती बेटी के लिए वात्यसल्य का ऐसा अभाव न था, जो मुझे खटकता। परन्तु मेरे वास्तविक दुर्भाग्य के दिन तब आये, जब मैं लगभग ८ वर्ष की थी—और मेरी स्नेहमयी माता इस दुःख-भरी दुनिया से चल बसीं। मेरे ऊपर मानों वज्र टूट पड़ा। अपनी······पत्नी के वियोग से शोक तो पिता जी को भी कभी हुआ, परन्तु उन्होंने कुछ समय के अनन्तर ही एक नवीन वधू का पणिग्रहण करके उक्त रिक्त स्थान की पूर्ति करली। उनको पत्नी का अभाव मिट गया, परन्तु मुझे मेरी प्यारी माता फिर न मिल सकी, बल्कि मुझे अब एक और संकट का सामना करना पड़ा। जैसे मेरी उम्र विवाह के योग्य हुई।······मेरे रूप, सौन्दर्य और गुणों के अनुसार समझिए, अथवा अपने वंश की मान-मर्यादा की दृष्टि से समझिए, पिताजी की

इच्छा मुझे किसी बड़े सम्पन्न कुलीन घर में अच्छे, स्वस्थ और सुशिक्षित वर को देने की थी, परन्तु कई वर्षों तक हमारी छोटी-सी उपजाति के अन्दर उक्त गुणों से युक्त कोई वह न मिल सका। इधर मेरी आयु के साथ पिताजी की चिन्ता भी बढ़ती जाती थी।.......इतने में मेरे दुर्भाग्य रूपी दुःखान्त नाटक का दूसरा अङ्क आरम्भ हुआ। मेरे अनुकूल कोई कुआँरा वर तो मिला नहीं, परन्तु कुछ ही काल के अनन्तर यह मालूम हुआ कि अमुक व्यक्ति की स्त्री का हाल में ही देहान्त हुआ है, वह एक बड़े नगर में १२५) मासिक वेतन पाता है; रूप, रङ्ग, अवस्था आदि की दृष्टि से भी वह पूर्ण योग्य हैं।......उस विधुर महाशय से मेरा सम्बन्ध पक्का हो गया। यथा समय मेरा विवाह और गौना हुआ।........और मेरा जीवन आनन्द से कटने लगा। मैंने अपने भाग्य को शहस्त्र बार सराहा।.......मेरे विवाह से पूर्व मेरे पति के परिवार में एक बड़ी दुर्घटना घटित हो चुकी, और वह थी मेरे देवर की असामयिक मृत्यु। उनका उसी वर्ष गौना हुआ था।.......... अब मेरी बाल-विधवा देवरानी मेरे पति के घर आने-जाने लगी। मैं नहीं कह सकती कि मेरे आगमन के पूर्व मेरे पति से उसका कभी एकान्त में मिलन हुआ हो। परन्तु जब मैं मैं दुबारा आई, तो मैंने इन श्रीमतीजी को वहाँ पहले डटा हुआ पाया।.......... जैसे कुछ खान-पान, वस्त्रभूषण मुझे मिलता था, उससे भी अधिक सत्कार मेरी देवरानी का होता था। इससे मैंने कुछ बुरा न माना। कारण, वह भी सगे-सहोदर की दुखिया पत्नी ठहरी, यदि जेठ उसे प्रेमपूर्वक रहता है, तो हर्ज ही क्या है? लेकिन रहते-रहते मुझे

पता लगा कि ये सब मेरे लिए ही काँटे बोये जा रहे हैं।"मेरे पुराने दिनों की फिर आवृत्ति होने लगी। मुझे घर की रोटी बनाने व चौका-चूल्हे का काम सौंपा गया, और देवरानी जी मेरे पतिदेव की अंकशायिनी बनीं। मामला यहाँ तक बढ़ा कि उक्त सम्बन्ध का अनिवार्य फल मेरी देवरानी की गर्भस्थिति में प्रस्फुटित हुआ। भयङ्कर भंडाफोड़ होने पर मेरे पति भी अपने कुकृत्य पर लज्जित तो हुए, परन्तु पश्चात्ताप करने की आवश्यकता न समझी। फौरन ही अपने अपने सजातीय सम्बन्धी व इष्ट-मित्रों को निमन्त्रणपत्र भेजे, जिनमें आपने बड़े ही अभिमान से लिखा कि बाल-विधवाओं की दयनीय दशा पर तरस खाकर, उनके कष्ट-निवारण के लिए व्यावहारिक आदर्श का उदाहरण रखने के लिए ही, आपने अपनी अनुज-वधू से गांधर्व-रीति से विवाह किया है, उसी के उपलक्ष्य में अमुक तारीख को एक प्रीति-भोज दिया जायगा। निश्चित तिथि को आपके इस 'सुधार-कार्य' (!) में कतिपय सुधारक कहलाने वाले मनचले युवकों ने भी सहयोग देकर अक्षय पुण्य प्राप्त किया। मैं अभागिनी इन्हीं चर्म-चक्षुओं से सारी लीला टुकुर-टुकुर देखती रही, और छाती पर वज्र रख कर अपने पाँव पर पड़ने वाली कुल्हाड़ी के असह्य आघात को सन्तोष के साथ सहती रही। कुछ काल के अनन्तर श्रीमती जी की गोद हरी हुई; एक पुत्री उत्पन्न हुई।······मुझे उनकी सेवा-चाकरी का कल्याणकारी कार्य सौंपा गया, और मैंने नत-मस्तक हो उसे सधन्यवाद स्वीकार किया। जब इतने पर भी उस नवीन जोड़ी को अपना मार्ग निष्कण्टक न जँचा, तो अन्य उपाय सोचा गया। मेरे पति ने दो मास का अवकाश ग्रहण किया, और देशाटन और तीर्थ-

यात्रा की तैयारी हुई।······इस यात्रा के सिलसिले में एक दिन हम एक धर्मशाला में ठहरे। रात्रि को खा-पीकर सब यथास्थान सो गये। प्रातः काल जागने पर मैं क्या देखती हूँ कि उस कोठरी में मैं अकेली ही एक धोती पहने, पड़ी हूँ, और मेरे पतिदेव व देवरानी जी गायब हैं। इधर-उधर खोज की, धर्मशाला के चौकीदार से पूछा, तो मालूम हुआ कि वे तो लगभग आधी रात को ही वहाँ से चल दिये थे, मेरी छाती पर वज्र-सा पड़ा। आँखों से आँसुओं की धारा बह चली, परन्तु कितनी ही बार पूछने पर भी बदनामी के डर से किसी को यह न बताया कि मैं कौन हूँ, और कहाँ की हूँ।····मेरे पति ने जिस निर्मम और निष्ठुर रीति से मुझे छोड़ा था, उसकी जड़ में पाप, वासना, उच्छृङ्खलता थी तथा धर्म, समाज और सदाचार की मर्यादा का एक दम उल्लंघन था। अस्तु; अब मैं क्या करती? चारों ओर निराशा का निविड़ अन्धकार नजर आने लगा। पास में फूटी कौड़ी नहीं; अकेली निकलने का साहस नहीं होता था, और जाऊँ तो भी कहाँ जाऊँ। परन्तु इसी क्षण मुझे स्मरण आया कि इसी नगर के अमुक मोहल्ले मेरी माता के कुछ सम्बन्धी रहते है, अतः मैंने धर्मशाला के द्वार पर से ही एक ताँगे वाले को पुकार कर वहाँ चलने को तैयार किया मैं वहाँ सुरक्षित जा पहुँची। वहाँ लोगों ने मुझे बहुत सान्तवना दी।·······मेरे पिता को भी मेरी दयनीश दशा की सूचना दी, और उनसे मुझे अपने साथ ले जाने का अनुरोध भी किया, परन्तु पिताजी की ओर से कोई उत्तर न मिला। अन्त में यहाँ से मुझे मेरे एक दूसरे सम्बन्धी मुझे अपने घर लिवा ले गये। उन्होंने मेरे पति से मेरे लिए अनुनय-विनय की किन्तु देवरानी

जी के वशीभूत होने के कारण उनके कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। अन्त में कुछ लोगों की सलाह से उन्होंने कानूनी कार्रवाई-द्वारा मेरे भाग्य का निर्णय करना चाहा। अदालत का द्वारा खटखटाया गया, और मजिस्ट्रेट का फैसला भी मेरे अनुकूल ही हुआ, परन्तु पुरुष को जो परम्परागत अधिकार हिन्दू-समाज में प्राप्त हैं, उनको कौन छीन सकता है? स्त्री को क्या मजाल कि वह बिना पति की इच्छा के उसके घर एक क्षण भी ठहर सके। अतः वहाँ से भी कोरी असफलता ही मेरे पल्ले पड़ी। आजकल मैं अपने चाचा, ताऊ, मामा आदि के यहाँ दिन काटती फिर रही हूँ। सुहाग का सिन्दूर सिर में रखना पड़ता है परन्तु वैसे मैं विधवा से भी बदतर हूँ। अब मेरी लगभग बीस वर्ष की चढ़ती जवानी है।……।"

चौथी घटना। मेरे एक दूर के सम्बन्धी हैं। सरकारी नौकरी में हैं। इनकी शादी हुई। पत्नी घर आई। तब उनको समझ पड़ा कि वह छोटी है, और उनके 'काम की नहीं है।' मतलब यह कि भोग-विलास के योग्य उसकी अवस्था न थी। फलतः उन्होंने उसे छोड़ दिया। दूसरी ले आये। अब उस बेचारी की अवस्था इतनी दयनीय है कि देखकर रोना आता है। उसकी हालत दासी से भी बदतर है, और दूसरी श्रीमती जी उसे यों देखती हैं, जैसे कोई प्लेग के चूहे को देखता है। वह बेचारी रोती और जिन्दगी के दिन पूरे करती है। उसने कई बार गिड़गिड़ा कर विनय की कि मैं कुछ नहीं चाहती, मुझे चुपचाप एक ओर पड़ी रहने दो पर दूसरी श्रीमती जी का ख्याल है कि आस्तीन में साँप पालना खतरनाक है। अब वह अच्छी युवती है।

हिन्दी के एक अच्छे कहानी-लेखक और कवि हैं पहले प्रयाग में रहते थे। अब कहाँ हैं, पता नहीं। इनके सम्बन्ध में, कई वर्ष हुए, 'चाँद' में एक पत्र छपा था। यह, इनकी माता, सब इनकी स्त्री को मिलकर सताते थे। उसके हाथ का भोजन नहीं करते थे; उसे मारते। और गाली देते थे। खाने-पीने में उसके साथ कुत्ते-सा व्यवहार किया जाता था। उसके साथ ऐसे-ऐसे अमानुषिक कर्म किये गये कि पशुता भी लज्जित हो! मज़ा तो यह कि यह सज्जन स्त्रियों, कवियत्रियों और लेखिकाओं के बीच बड़े प्रिय—'पापुलर'—हैं और अनेक सुधार का दम भरनेवाली एवं पुरुषों को गालियाँ देनेवाली लेखिकाएँ एवं कवियत्रियाँ आपकी मित्र हैं। यह हमारे समाज का कोढ़!

मैंने यहाँ थोड़े-से उदाहरण दिये हैं। मैं जानता हूँ, समाज में ऐसी सधवा विधवाएँ बहुत बड़ी संख्या में हैं, और सम्भव है, उनकी संख्या विधवाओं से भी अधिक हो।

अब प्रश्न यह है कि इसका हल क्या है? एक रूढ़िवादी कहेगा—ऐसा होता ही आया है, और होता ही रहेगा; संसार ऐसे ही चलता है। एक विद्रोही कहेगा—उखाड़ दो ऐसे समाज को, जिसके कारण ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं। पहले से मैं कहूँगा—ऐ भाई, तू दुनिया में जीने लायक नहीं, और दूसरे से कहूँगा—सारे जोश और दर्द के साथ भी तू गलत रास्ते पर है। मनुष्य के हृदय को ये सामाजिक विद्रोह बदल नहीं कसते। और दाम्पत्य जीवन का सुख अधिकारों, विद्रोहों और क्रांतियों पर निर्भर नहीं है। तब क्या हो सकता है? पहली बात यह कि हृदय की गति कुछ ऐसी है कि इसके सम्बन्ध में कुछ नपे-तुले नियम

नहीं बनाये जा सकते, किन्तु मनुष्य अपने मन पर अभ्यास से इतना नियन्त्रण अवश्य स्थापित कर सकता है कि अपने कुटुम्ब और समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर सके, और अपने एवं कुटुम्ब तथा समाज के बीच एक हितकर सामञ्जस्यात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सके। इसके लिये सबसे जरूरी बात यह है कि समाज में ऐसा वातावरण पैदा किया जाय कि एक पत्नी के रहते पति दूसरी शादी न कर सके। स्त्रियों में अपनी जाति के प्रति इतना स्वाभिमान एवं गौरव जाग्रत होना चाहिए कि जिस व्यक्ति ने एक स्त्री के साथ दुर्व्यवहार किया है उसके साथ किसी प्रकार का निकट सम्बन्ध रखने से वे इन्कार करें। समाज में ऐसे पुरुषों के प्रति तीव्र उपेक्षा एवं विरोध का भाव पैदा करना चाहिए और ऐसे व्यक्तियों को सामाजिक सुविधाएँ न मिलनी चाहिएँ।

एक बात यह भी है कि विवाह में वर-कन्या की प्रवृत्तियों, मानसिक निर्माण एवं स्वभाव पर सबसे अधिक विचार करना चाहिए। वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए मृदुलता, सहनशीलता एवं उदारता तीन सर्वोच्च गुण हैं। मैंने देखा है कि ज़रा-सी घटना ने पति-पत्नी के सम्पूर्ण सम्बन्ध को विषाक्त कर दिया है। पति-पत्नी दोनों में तेजस्विता हुई, तो प्रायः उसका परिणाम दुःख होगा। कभी-कभी एक कड़वी घूँट और चुप्पी या कठोर बात पर एक हल्की, मधुर दिल्लगी अथवा मुस्कान अमृत का काम कर जाती है। मतलब यह है कि जब तक दोनों में एक दूसरे को निभाने का और एक-दूसरे की गलतियों के प्रति उदारता का भाव न हो, दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं हो सकता।

इन अगणित सधवाओं का मौन क्रन्दन समाज की नींव को हिला

रहा है। इनकी इतनी उपेक्षा क्यों है? इनके साथ यह बेदर्दी क्यों है? इसके मूल में एक ही बात है, और वह यह कि वर्तमान सभ्यता ने हमारे नैतिक अङ्कुश ढीले कर दिये हैं। उसने मानव-जीवन से कर्त्तव्य का भाव, धर्म का भाव उठा लिया है, और उसकी जगह केवल मनोरञ्जन और दिल-बहलाव की प्रतिष्ठा की है। त्याग एवं आत्म-नियन्त्रण की जगह भोग, अधिक से अधिक भोग की आकांक्षा हम में जगा दी गई है। आधुनिक युग के कर्कश स्वर ने और आधुनिक सभ्यता के बाह्य और कृत्रिम युग आकर्षण ने नारी के मातृत्व को हमारी आँखों से लुप्त कर दिया है, और उसकी जगह **कामिनी और रमणी** की प्रतिष्ठा की है। नारी, अपनी सारी लम्बी-चौड़ी शेखियों और हमारी लम्बी-चौड़ी सामाजिक घोषणाओं के होते हुए भी, हमारे सामाजिक एवं व्यक्तिगत मनोरञ्जन और भोग की चीज़ बन गई है। फलतः वे सब नियन्त्रण और बन्धन टूट गये हैं, जिनके कारण पति और पत्नी के बाह्य रूप तथा सम्बन्ध के अन्दर कर्त्तव्य और धर्म का एक नियोजक सूत्र हमारे जीवन को बाँधता एवं उचित मार्ग पर चलाता था। आज हम ऊपर-ऊपर देखते हैं; ऊपर-ऊपर की बातें करते हैं; इसलिए नारी अपने सच्चे स्थान से च्युत हो रही है।

तब आज हमारे गृहों में, लक्ष-लक्ष कलेजों में जो विध्वंसक हाय धीरे-धीरे उठ रही है, उसके लिए विद्रोह तो करना होगा। पर कैसा विद्रोह? विद्रोह उस ग़लत दृष्टिकोण के प्रति, जो हममें पैदा किया जा रहा है। विद्रोह नारी की उस हीन, तुच्छ, पथभ्रष्ट अवस्था के विरुद्ध जिसने उसकी श्री और कान्ति हर ली है। ओ नारी! तू रोती रहेगी?

तू केवल आँसू बहायेगी ? ऐ सती ! तू उठ, ज्वाला-सी उठ, और वर-दान-सी हमारे पास आ। तेरी ज्वाला समाज के कलुष को जला दे; तेरे आशीर्वाद से हमारी सुप्त मनुष्यता जाग्रत हो और तुझमें वह तेज जगे कि हम तेरा असली रूप देख सकें, तेरे अंचल की छाया में खड़े हों, और न केवल हमारी आँखें रो रही हों वरन् हमारे दिल के बादलों में अनुताप की विद्युत्-रेखा चमक रही हो।

तब तक इन अगणित सधवा विधवाओं की सहायता के लिए ऐ समाज के सच्चे युवको ! हम तुम्हारा आवाहन करते हैं।

---

[ ४ ]

# मूर्छिता

अभी उस दिन एक बहिन से बातें चल पड़ीं। यह एक कालेज की प्रिंसपल हैं। सुधार के वातावरण में पली हुईं। पुरुषों के अन्यायों पर इन्होंने काफी लिखा है। जीवन के शैशव में बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर यह चली थीं। समझती थीं कि वह युग बीत गया है जब नारी पुरुष के इशारे पर नाचती थी। आज विश्व के कोहाहल और संघर्ष में वह राजपथ पर खड़ी है और यात्रा में पूरा भाग लेगी।

पर अनुभव ने शीघ्र स्वप्न भंग कर दिया। अब वह अनुभव करती हैं कि एक अद्भुत-सी चीज़ आज की नारी बन गई है। सुबह से शाम तक अपने शृङ्गार और प्रसाधन में व्यस्त; कालेज जा रही है तो बार-बार साड़ी को देख लेती है; वेणी पर हाथ जाते हैं कि कहीं गाँठ खुल तो नहीं रही है; 'वैनिटी बैग' में से शीशा निकाल कर देखती जाती है; रूमाल से चप्पल पर पड़ी गर्द झटकार लेती है; विद्याभिरुचि उतनी नहीं जितनी 'डिग्रियों'—उपाधियों—के बल पर 'अच्छा' वर प्राप्त करने का भाव है; विवाह के पूर्व यह और विवाह के बाद बँगले, कार, सिनेमा, क्लब, पार्टियाँ; या यह न हुआ तो कभी समाप्त न होने वाली

एक आग में धीरे-धीरे जलना। और कुछ काम नहीं।

वह कहने लगी—जो सार्वजनिक कार्यों में थोड़ा-बहुत आती भी हैं उनका भी उनमें कोई गम्भीर अनुराग नहीं होता; वहाँ भी वे मनो-विनोद ही ढूँढ़ती फिरती हैं और इसका नतीजा यह होता है कि बहुत शीघ्र स्वयं दूसरी के दिलबहलाव की सामग्री बन जाती हैं।

इसी सिलसिले में उन्होंने अपना एक अनुभव मुझे सुनाया। एक प्रसिद्ध देशनेता के अनुरोध पर एक दूसरी सार्वजनिक कार्यों में आगे बढ़ी हुई बहिन के साथ काम करने वह गईं। बहिनों के साथ भाई भी थे। एक बहिन के घर सब विचारार्थ एकत्र हुए। वहाँ के दृश्य देखकर इस बहिन की आँखें खुल गईं और उनका इस प्रकार सार्वजनिक कार्य करने का उत्साह भङ्ग हो गया। उन्होंने देखा—कोई एक बहिन के कंधे पर हाथ रक्खे है, कोई दूसरी के। एक ने इनके कंधे पर भी हाथ रख दिया। इन्होंने उसे फटकारा तो औरों ने इन्हें 'असंस्कृत' और 'रुक्ष' समझा।

सबसे बड़ी बात इस मामले में यह है कि देश-सेवा या समाज-सेवा के कार्यक्रम पर विचार करते समय जो गम्भीरता, जो वेदना, जो तन्मयता होनी चाहिए वह कहीं दिखाई न देती थी। शिथिल, विकृत, विकारग्रस्त मन और वैसी ही चेष्टाओं का वाहक शरीर लिये जीवन के अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्नों पर दिल्लगी हो रही थी।

तब से यह बहिन वहाँ नहीं जातीं और जब कुछ काम करना होता है तो चुपचाप गाँवों की ओर निकल जाती हैं—किसी दीन-दुखिया के पास बैठती हैं; उसके दुःख-दर्द में शरीक होती हैं। उसकी जो कुछ सेवा

संभव हुई, कर देती हैं। स्त्रियों और बच्चों के साथ अपनापन का सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश करती हैं। अब वह उस आनन्द का अनुभव करती हैं जो सच्ची और सात्विक सेवा तथा हार्दिक तन्मयता से प्राप्त होता है।

इस प्रकार के अनुभव और इस प्रकार की बातें एकाकी नहीं हैं। वे हमारे समाज की एक गहरी मानसिक व्याधि की सूचना देती हैं। मैं तो ज्यों-ज्यों नारी की समस्याओं का अध्ययन करता जाता हूँ मेरी धारणा दृढ़ होती जाती है कि नारी आज जैसी मूर्छित है वैसी कभी न थी। प्रचार के इस युग में, जब प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वर्ग अपने अधिकारों का प्रश्न लेकर उठ खड़ा हुआ है और जन-सेवकों ने जागरण की शंख-ध्वनि से हमारा मानस कम्पित कर दिया है तब यह बात न केवल आश्चर्यकारी वरं हास्यास्पद प्रतीत होगी। पर हास्यापद यह नहीं है। शंख तो बज रहे हैं पर जब हर दसवें आदमी के हाथ में एवं ओठों से शंख और बिगुल लग रहे हों तब किसी को कुछ न सुनाई देना स्वाभाविक है।

मैं पूछता हूँ कि आज जब संसार पर मरण का अन्धकार छा गया है और जब जीवन, भयत्रस्त-सा, हमारे दरवाज़े की कुंडी खटखटा रहा है तब यह मूर्छित नारी क्या एक खतरा नहीं है? आज वह अपने प्रति कैसे आश्वस्त होगी और मानव जाति की माता होने के नाते उसे क्या आश्वासन देगी?

अपने सम्पूर्ण दावों और विरोधों के साथ भी आज की अधिकांश शिक्षित स्त्रियाँ पुरुषों की उससे अधिक गुलाम हैं जितनी उनकी माताएँ

या दादियां थीं—यदि 'गुलाम' ही आप उन्हें कहना चाहें। मैं मानता हूँ कि हमारी पत्नियाँ, बेटियाँ और बहिनें उससे अधिक असमर्थ हैं जितना हमारी माँएँ तथा उनकी बहिनें थीं। आधुनिक नारी अपने प्रति एक सजीव व्यंग-सी है। जब पिछले चालीस वर्षों में जीवन का संघर्ष अपेक्षाकृत बढ़ता गया है तब वह बराबर अपने रूप और शृङ्गार, अपने शरीरिक सुख के लिए सुविधाएँ और बाज़ार पैदा करने में अधिकाधिक व्यस्त होती गई है। पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ अपढ़ या अपेक्षाकृत कम पढ़ी-लिखी स्त्रियों की अपेक्षा कहीं अधिक असहाय हैं। आकांक्षाएँ बड़ी-बड़ी; शक्ति थोड़ी। और फिर आकाँक्षाएँ भी प्रायः व्यक्तिगत सुविधा और वैभव तक सीमित। जीवन में कष्ट से पलायन की वृत्ति जैसी आज की नारी में है, पहले कभी न थी। मानों नारी आज केवल रमणी रह गई है। एक शिक्षित नारी की शक्ति आज अधिक मामलों में केवल उसका रूप है और इस रूप के प्रति आज जितना आग्रह, जितनी ममता उसमें है उतनी और किसी चीज के लिए नहीं है। और वह ममता उसमें व्यक्त इस तरह होती है कि वह पुरुष का शिकार बनती जा रही है। आज अधिकाँशतः केवल रूप के बल पर वह पुरुष को आकर्षित कर सकती है। विवाहों के विज्ञापन देखिए; सभ्य समाज में होने वाले विवाहों पर एक सरकारी नजर दौड़ाइए—नारी कैसी भी गुणवती हो पर यदि रूपवती नहीं है तो सफलतापूर्वक उसका विवाह होना कठिन है। कहा जाता है कि पुरुष सदा स्त्री के रूप का प्यासा रहा है। पर यह जानकर भी उसकी प्यास को बढ़ा देने का प्रयत्न आज की नारी क्यों करना चाहती है? पुरूष की सुप्त वासना

को चुटकियाँ काट-काट कर वह क्यों जगा रही है? जो लचक और और मटक, जो शृङ्गार और आकर्षण कवियों की कल्पना तक या गृह के अन्तरङ्ग में सीमित था वह आज राजमार्ग पर इतराता और अठखेलियां करता चल रहा है।

मैं भी चाहता हूँ कि नारी अपने गौरव से गौरवान्वित हो; अपनी महिमा से महिमामयी हो; अपने स्वतन्त्र अस्तित्व और अधिकार की घोषणा करे। पर क्या अपने को केवल पुरुष के आकर्षण का केन्द्र बना देने से यह होगा?

× × ×

—और दूसरी ओर दुनिया से अनजान, देश और धर्म से अनजान केवल परम्परा के अवगुण्ठन में बँधा, ब्याह जिसके लिए अनिवार्य क्रम है—जिसका ब्याह इसीलिए हुआ कि ब्याह हो है, अपने पति और अपने बाल-बच्चों की नाव खेलने वाली नारी;—धर्म की अपेक्षा परम्परा का बोझ जिस पर अधिक है, ज्ञान की अपेक्षा अफवाह और किंवदन्तियाँ जिसके मानस पर छाई हुई हैं! थोड़ी दूर तक देखनेवाली थोड़े में सन्तुष्ट और थोड़े में असन्तुष्ट। मानों संसार के प्रति आँखें बन्द किये। एक साँस और गति से जीवन की लीक-लीक से बनी डगर पर चलनेवाली। चलना है; इसलिए चलती है। बोझ ढोना ही है, इसलिए ढोती है।

इस लड़की का जन्म होता है केवल विवाह के लिए। उसकी और कोई सार्थकता नहीं है। माता उसे पाकर पुलकित नहीं; पिता उसे पाकर प्रसन्न नहीं। जब आ गई है तब उसे ग्रहण करना ही है इसलिए

कुटुम्ब में वह स्वीकृत है। गहने-कपड़ों में मगन, बाल-बच्चों में मगन, गाँव-घर में मगन, सगे-सम्बन्धियों में मगन। जो मिला है उसके प्रति कोई सक्रिय विरोध का भाव उसमें नहीं। वह क्या है और कहाँ है, इसकी कोई अनुभूति नहीं। पुरुष के बिना रास्ता भी खोजने में असमर्थ; चलती हुई भय, लज्जा, आशङ्का से त्रस्त; भीत मृगी की भाँति देखकर, फूँक फूँककर पाँव रखनेवाली। खिलौना-सी!

नारी-जीवन के ये दोनों ही दृश्य बड़े दुःखद हैं। समाज में इतनी सभाएँ हैं; इतने संगठन हैं; हर तरह का काम हो रहा है पर चेतना नहीं आ रही है, उसका कारण यही है कि नारी जीवन मूर्च्छा के अन्धकार और नशे से भर गया है। आज नारी अचेत है; क्षुद्र प्रश्नों में व्यस्त, क्षुद्र स्वार्थों में लिप्त, दूर तक देखने में असमर्थ, अपनी संस्कृति और उदार परम्पराओं के प्रति अविश्वस्त।

मैं मानता हूँ कि हमारी संस्कृति के लिए बड़ा ही विकट समय यह आया है। हमें भय दूसरों से उतना नहीं, जितना अपने से है। अपने से इसलिए कि हम आत्मदीप्ति से शून्य हो गये हैं। हम अपने अन्तर को भूलकर बाहर प्रकाश के लिए भटक रहे हैं। आँखें बन्द किये हुए सूर्य के न उगने का यह उलाहना व्यर्थ है। एक सर्वग्राही नास्तिकता से हमारा मानस आच्छन्न होता जा रहा है। चारों ओर से तेज़ हवाएँ आ रही हैं और इसके बीच हमें अपने दीपक की रक्षा का कोई उत्साह नहीं रह गया है।

और यह सब इसलिए और भी भयानक हो उठा है कि न केवल हमारे राष्ट्र की शरीर-शक्ति सुप्त है वरं प्राण-शक्ति भी सो रही है। कौन

है यह प्राणशक्ति ? वही नारी, जो युग-युग से हमारी सभ्यता के आदर्श का दीपक प्रज्वलित रखती आ रही है; जिसने पुरुष के ज्ञान को भक्ति और श्रद्धा से संस्कृत किया है; जिसने स्वार्थों पर मानवता की प्रधानता की घोषणा की है; जिसने मानवजाति में समष्टिगत कोमल प्राण और आत्मा का सृजन किया है। वही दानमयी, सर्वत्यागमयी, महिमामयी नारी।

वही नारी आज मूर्च्छित है। वही नारी आज अचेत है। माता आज दीना बन गई है; अपने गौरव के प्रति विस्मृत। स्नेह की धारा से गृहों का सिञ्चन करनेवाली गृहलक्ष्मी आज विवशा, उपेक्षिता, तिरस्कृता है। अपने दूध से मानव-जाति की आशा और भविष्य का रक्षण करने वाली माता आज भूलुण्ठिता है। अपने को देकर सब कुछ पाने वाली, सर्वमयी अन्नपूर्णा आज रिक्ता है। तब कैसे जागरण होगा ?

बाहर दीपक सँजोने का आज फैशन है। जगमग करती दीपमालिका मन को मुग्ध किये लेती है। प्रकाश से आँखें चकाचौंध हैं। पर अन्तर सूना, देवगृह में बुझती-सी एक लौ, जिसकी ओर किसी का ध्यान नहीं और उपेक्षा तथा स्नेह की कमी से जिसकी बाती दम तोड़ना चाहती है। चेतन नारी से शून्य गृह ऐसा ही होता है।

मेरे सामने एक चित्र टँगा है। मनोरम प्रान्त; चतुर्दिक हरे भरे वृक्ष; डालियाँ हिलतीं-डुलती; झकोरों से कम्पित वृक्ष। एक नारी आँचल से दीप को बुझाने से बचाती हुई देव-मन्दिर की ओर अग्रसर हो रही है। कहीं उसका ध्यान है; अपना भी ध्यान नहीं है। बस दीपक जलता रहे, देवता के मन्दिर को प्रकाशित करनेवाला दीपक।

यही हमारी सभ्यता और संस्कृति का चित्र है। यही वास्तविक नारी का चित्र है। कठिनाइयों और प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच भी अपने कर्तव्य से अनुरक्त। अपने आदर्श को बुझने न देने को सन्नद्ध—जिसने युगों से इसी प्रकार हमारी आत्मा को जाग्रत रखा है—प्राणों की दीप्ति बुझने नहीं दी है; जिसके अञ्चल तले प्रकाश सुरक्षित है; जिसकी छाया में देवता की अर्चना आश्वस्त है। आत्मदेव की पूजा निरन्तर चलती रहे, इस उद्देश्य से श्रद्धा के दीपक को बचाती हुई, देवता के मार्ग पर निरन्तर बढ़ने वाली।

यह सम्पूर्ण नारी-शक्ति आज मूर्च्छित है। यह समस्त शक्ति आज रुद्ध है। हे माताओ, बहनो, बेटियो! तुम अपने गौरव की परम्परा की ओर देखो। तुम जगो; तुम्हारे जगे बिना-कुछ न बचेगा। तुम्हारे सहयोग बिना कोई भी महत्वपूर्ण कार्य असम्भव है। तुम उठो। आज मोह के तुच्छ बन्धनों को तोड़ दो। आज जीवन तुम्हारी भीख चाहता है; आज सन्तति तुम्हारा मातृत्व चाहती है। आज भाई तुम्हारा बहनापा चाहते हैं। युग-युग से तुमने स्नेह का जो दान किया है, वह क्या आज बन्द हो जायगा? तुम्हारी मधुर वाणी से गृह मुखरित रहे हैं; क्या आज वे मौन हो जायँगे? तुम्हारी मुस्कान से हमारा मानस स्निग्ध होता रहा है; क्या आज उस क्रम का अन्त हो जायगा? तुमको देख कर हमने अपने को खोजा और पाया है। तब आज तुम अपने स्वरूप को क्यों छोड़ोगी?

माँ! जगो। उठो। तुम बन्धनमुक्त हो। तुम सर्वशक्तिमयी हो। तुममें वह मातृत्व जाग्रत हो—वह गौरव, वह तेज, विश्व के, भारत के

प्राण जिसके लिए छटपटा रहे हैं। हे मङ्गलमयी ! तुम्हारे मंगल-गान से मानवता का मार्ग मुखरित हो। हे दानमयी ! तुम्हारे दान से हमारा जीवन धन्य हो। हे शक्तिमयी ! तुम्हारे तेज से हम तेजस्वी हों। उन बन्धनों को टूट जाने दो जिनमें तुमने अपने को बाँध लिया है। हे रुद्ध नारी ! तुम निर्बन्ध हो; हे मूर्छिते ! तुम जाग्रत हो।

---

## [ ५ ]

# पतिव्रता क्या कर सकती है ?

## —एक आधुनिक दृष्टान्त—

आर्य समाज के इतिहास में स्व० स्वामी श्रद्धानन्द का स्थान स्वामी दयानन्द के बाद ही समझा जाता है और मेरी निजी सम्मति में तो वे स्वा० दयानन्द से आर्य सभ्यता के अधिक अच्छे प्रतिनिधि थे। यहाँ इस विवाद की जरूरत नहीं। मेरा मतलब इतना ही है कि स्वामी श्रद्धानन्द को अंधविश्वासी या मिथ्याचारी कहकर 'आधुनिक' युवक अलग नहीं कर सकते। बचपन से मृत्यु तक उनका जीवन बहुरंगे अनुभवों की एक माला है। इन्हीं स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन से हम कुछ चित्र यहाँ देना चाहते हैं जिनसे अपने-आप स्पष्ट हो जायगा कि एक अपढ़ पर अच्छे संस्कारों के बीच पली हुई पतिप्राणा नारी क्या कर सकती है और वह एक अपदार्थ, असमर्थ अबला है या पति-हृदय पर शासन करनेवाली उदार, महिमामयी तथा शक्तिमान नारी।

जब काशी में मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के पिता कोतवाल थे तब मुंशीराम को कसरत-कुश्ती, अखाड़े का शौक था। अच्छा कसरती

शरीर था। भले-बुरे सभी तरह के संगी-साथी थे। मामा ने मद्यपान का चस्का लगा दिया था। एक बार गंगा के किनारे टहलते हुए इन्होंने एक पाखण्डी नंगे बाबा से सोलह वर्ष की एक सुन्दरी सधवा बहन की रक्षा की। इसी सिलसिले में वह लिखते हैं—

'घटना तो मेरे मन और आत्मा को उच्च बनानेवाली थी, परन्तु नास्तिकता की लहर और पुराने अंग्रेजी उपन्यासों के विचित्र आचार-शास्त्र ने मन की अवस्था बदल दी थी। मैंने अपने आपको एक वीर रक्षक (Knight errant) समझ लिया, जिसने एक पीड़ित देवी की रक्षा की। अब उस अबला देवी को मैंने अपनी प्रिया (Lady love) की उपाधि मन ही मन दे ली और अपने आपको उसका सदा का रक्षक (Champion) कल्पित कर लिया। उन्हीं दिनों मेरे मामू महाशय ने मुझे कुछ-कुछ मद्यपान का अभ्यास शुरू करा दिया था। अब तो मैंने मद्यपवीर का पूरा रूप धारण कर लिया। यदि उस रामायण पर से श्रद्धा न उठ गई होती जिसमें सीता के आदर्श पतिव्रत पर मैंने बारंबार पवित्र अश्रुधारा बहाई थी तो मुझे निश्चय है कि उस गढ़े से बच जाता जिसमें गिरने के पीछे मुझे घोर प्रायश्चित्त करने पर ही शान्ति प्राप्त हुई थी। यदि अपने प्राचीन इतिहास पर श्रद्धा होती तो पीड़ित स्त्री-जाति का रक्षा बन्धन भाई बनकर उनकी रक्षा का व्रत लेता। परन्तु मैंने तो अपनी सभ्यता को जङ्गलीपन और अपने साहित्य को मूर्खता का अपनी समझ रखा था फिर उनसे मुझे सहायता कब मिल सकती थी?

परिणाम वही हुआ जो होना था। एक दिन ये अपनी मर्यादा से

स्खलित हो गये। हृदय तीव्र अनुताप से भर गया। लिखते हैं—'हा ! वर्षों की कमाई एक घण्टे में डूब गई। उस रात मैंने भोजन न किया। रात को व्याकुल रहा। दूसरे दिन प्रातः रामायण का फिर स्मरण आया।' इसके फ़ल-स्वरूप इन्होंने उसे धर्म की बहिन बना लिया। पर जो कमजोरी जीवन में आ गई थी वह दूसरे रूपों में प्रकट होती रही। मद्य-मांस और जुए का चस्का लग गया। धीरे-धीरे इनके मन में विवाह करके एक जीवन-संगिनी प्राप्त करने की इच्छा पैदा हुई। लेकिन इनके दिमाग में धुआँ भरा था, जैसा कि कालेज की शिक्षा प्राप्त करने वाले आजकल के अधिकांश युवकों के दिमाग में भरा होता है। अपनी मनःस्थित के सम्बन्ध में ये स्वयं लिखते हैं—

"मथुरा चलते ही विवाह की धुन में सब कुछ भुला दिया। इंग्लिश कवियों और उपन्यास लेखकों का सत्संग (!) साथ था। मैंने अपनी भविष्य की धर्मपत्नी के विषय में उत्तम-से-उत्तम उपन्यास की नायिका की कल्पना कर ली। मैंने अपनी धर्मपत्नी के लिए बहुत से सामान इकट्ठे किये थे और यह समझ लिया कि आगामी प्रेममय जीवन आनन्द से कटेगा।.......बारात बड़ी धूम-धाम से चढ़ी। वधू की आयु बारह वर्ष की थी।....

"मैं विवाह के धूम-धड़क्के से निवृत्त होकर बहुत ही निराश हुआ। मैंने समझा था कि वधू युवा मिलेगी परन्तु अभी वह बाल्यावस्था में ही थी। फिर मैंने निश्चय किया कि उसे स्वयं पढ़ाऊँगा। इस विचार ने मुझे बहुत सन्तोष दिया। परन्तु उसे मुझसे मिले बिना ही विदा होना

पड़ा। फिर कुछ धैर्य बँधा जब सुना महीना पीछे मुकलावा (द्विरागमन) होगा। उस बार भी दो दिन घर रखकर, बिना मुझसे परिचय कराये ही बड़े भाई साहब ने विदा कर दिया।"

इसके बाद फिर इनके जीवन पर अन्धकार छा गया। शराब का चस्का खूब लगा और उसी के साथ फिर पतित हुए। नाच-तमाशे में मन लग गया। काफी समय तक भटकने के बाद एक बार फिर घर पहुंचे और तीसरी बार अपनी धर्मपत्नी को, बिना मुँह देखे, विदा करा लाये। तलवन (गाँव) पहुँचकर पहली बार पत्नी से बात-चीत हुई। पुराने नाविलों के हवाई किले रुखसत हुए; परन्तु एक नया भाव भी उत्पन्न हुआ। वह यह कि जिस अबला को अपना आश्रय मिला है उसे गुणवती बनाने के लिए शिक्षा देनी चाहिए। उस समय इनके मन में दया और रक्षा का भाव भी प्रबल था।

परन्तु यह भाव भी स्थिर न रहा। इनका जीवन अच्छे और बुरे संस्कारों के संघर्ष में झूल रहा था। इसलिए ये बार बार गिरते थे, बार-बार अनुपात करते थे और फिर बुरी आदतों में फँस जाते थे। एक ओर ये कुसंस्कार थे; बुरी आदतें थी और दूसरी ओर पतिप्राण पत्नी की एकान्त भक्ति और निष्ठा थी। इस भक्ति ने कैसे कुसंस्कारों पर विजय प्राप्त की, इसकी कथा बड़ी मनोरंजक है। स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वयं ही इसका विस्तार से वर्णन किया है। वे लिखते हैं—

'बरेली अपने पर शिवदेवी (मेरी धर्मपत्नी) का यह नियम हुआ दिन का भोजन तो मेरे पीछे करती ही, परन्तु रात को जब कभी मुझे देर हो जाती और पिता जी भोजन कर चुकते तो और अपना भोजन

ऊपर मँगा लेती और जब मैं लौटता उसी समय अँगीठी पर गर्म करके मुझे भोजन करा पीछे स्वयं खातीं। एक रात मैं आठ बजे मकान लौट रहा था। गाड़ी दर्जी चौक के दरवाजे पर छोड़ी। दरवाजे पर ही बरेली के बुजुर्ग रईस मुंशी जीवन सहाय का मकान था। उनके बड़े पुत्र मुंशी त्रिवेणी सहाय ने मुझे रोक लिया। ग़ज़क सामने रक्खी और जाम भर कर दिया। मैंने इन्कार किया। बोले—'तुम्हारे ही लिए तो दो आतशा खिंचवाई है। यह जौहर है।' त्रिवेणीसहाय जी के छोटे सब मेरे मित्र थे। उनको मैं बड़े भाई के तुल्य समझता था। न तो आतशा का मतलब समझा, न जौहर का। एक गिलास पी गया। फिर गपबाजी शुरू हो गई और उनके मना करते करते मैं चार गिलास पी गया। असल में वह बड़ी नशीली शराब थी। उठते ही असर मालूम हुआ। दो मित्र साथ हुए। एक ने कहा, चलो मुजरा कराएँ। उस समय तक न तो मैं कभी वेश्या के मकान पर गया था, और न कभी किसी वेश्या को बुलाकर अपने यहाँ बातचीत की थी; केवल महफिलों में नाच देख कर चला आता था। शराब ने इतना जोर किया कि पाँव जमीन पर नहीं पड़ते थे।.......एक वेश्या के घर में जा घुसे। कोतवाल साहब के पुत्र को देखकर सब सलाम करके खड़ी हो गईं। बस बड़ी नायिका का हुक्म हुआ कि मुजरा सजाया जाय। उसकी नौची के पास कोई रुपया देनेवाला बैठा था। उसके आने में देर हुई न जाने मेरे मुँह से क्या निकला सारा घर काँपने लगा। नौची घबराई हुई आई और सलाम किया। तब मुझे किसी अन्य विचार ने आ घेरा। उसने क्षमा माँगने के लिए हाथ बढ़ाया और मैं 'नापाक' 'नापाक' कहते हुए नीचे उतर आया।

वह सब पीछे साथियों ने बताया। नीचे उतरते ही घर की ओर लौटा, बैठक में तकिये पर जा गिरा और बूट आगे कर दिये जो नौकर ने उतारे। उठ कर ऊपर जाना चाहा परन्तु खड़ा नहीं हो सकता था। पुराने भृत्य बूढ़े पहाड़ी पाचक ने सहारा देकर ऊपर उठाया। छत पर पहुँचते ही पुराने अभ्यास के अनुसार किवाड़ बन्द कर लिये और बरामदे पास पहुँचा ही था कि उलटी होने लगी। उसी समय एक नाजुक छोटी अँगुलियों वाला हाथ सिर पर पहुँच गया और मैंने उलटी खुल के की। अब शिवदेवी के हाथों में मैं बालकवत् था। कुल्ला करा, मेरा मुँह पोंछ उपर का अंगरखा, जो खराब हो गया था, बैठे ही बैठे फेंक दिया और मुझे आश्रय देकर अन्दर ले गई। वहाँ पलँग पर लिटा कर मुझ पर चादर डाल दी बैठ कर सिर दबाने लगी। मुझे उस समय का करुणा और शुद्ध प्रेम से भरा मुख कभी न भूलेगा। मैंने अनुभव किया मानो मातृशक्ति की छत्र-छाया के नीचे निश्चिन्त लेट गया हूँ। पथराई हुई आँखें बन्द हो गई और मैं गहरी नींद में सो गया। रात के शायद एक बजा था जब मेरी आँख खुली। वह चौदह-पन्द्रह वर्ष की बालिका पैर दबा रही थी। मैंने पानी माँगा। आश्रय देकर उठाने लगी, परन्तु मैं उठ खड़ा हुआ। गरम दूध अंगीठी पर से उतार और उसमें मिश्री डाल कर मेरे मुँह को लगा दिया। दूध पीने पर होश आया। उस समय अँग्रेजी उपन्यास मगज में से निकल गये और गुसाईं जी के खींचे दृश्य सामने आ खड़े हुए। मैंने उठकर और पास बैठकर कहा—'देवी! तुम बराबर जागती रही और भोजन तक नहीं किया। अब भोजन करो।' उत्तर ने मुझे व्याकुल कर दिया। परन्तु

उस व्याकुलता में भी आशा की झलक थी। शिवदेवी ने कहा—'आपके भोजन किये बिना मैं कैसे खाती। अब भोजन करने में क्या रुचि है ?' उस समय की दशा का वर्णन लेखनी-द्वारा नहीं हो सकता। मैंने अपनी गिरावट की दोनों कहानियाँ सुनाकर देवी से क्षमा की प्रार्थना की परन्तु वहाँ उनकी माता का उपदेश काम रहा था—'आप मेरे स्वामी हो, यह सब कुछ सुनाकर मुझ पर पाप क्यों चढ़ाते हो ? मुझे तो यह शिक्षा मिली है कि मैं आपकी नित्य सेवा करूँ।' उस रात बिना भोजन किये दोनों सो गये और दूसरे ही दिन से मेरे लिए जीवन ही बदल गया।

'वैदिक आदर्श से गिर कर भी जो सतीत्व-धर्म का पालन पौराणिक समय में आर्य महिलाओं ने किया है, उसी के प्रताप से भारत-भूमि रसातल को नहीं पहुँची और उसमें पुनरुत्थान की शक्ति अब तक विद्यमान है—यह मेरा निज का अनुभव है। भारत माता का ही नहीं उसके द्वारा तहजीब की ठेकेदार संसार की सब जातियों का सच्चा उद्धार भी उसी समय होगा जब आर्यावर्त की पुरानी संस्कृति जागने पर देवियों को उनके उच्चासन पर फिर से बैठाया जायगा।'

इस आदर्श के विरुद्ध कोई 'आधुनिका' होती तो वह घृणा से मुँह फेर लेती; पति से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेती। जहर से जहर और बढ़ता और दोनों के जीवन और चौपट होते। पर युग-युग से भारतीय नारी के हृदय में जो अमृत सञ्चित होता रहा है उसने बार-बार विष को निष्फल कर दिया है और न केवल नारी को सभ्यता के शीर्ष स्थान पर उठाकर प्रतिष्ठित किया है बल्कि पुरुष की भी रक्षा की है और उसे सन्मार्ग पर प्रेरित किया है।

[ ६ ]

# मृत्यु का उपहास करने वाली हिन्दू नारी

किसी पराधीन देश का किसी स्वतन्त्र और बिल्कुल भिन्न परम्परावाले देश के सम्पर्क में आना भयानक होता है। भारतवर्ष के साथ भी यही हुआ है। हजारों वर्ष से विदेशी विजेताओं की एक लम्बी श्रेणी हमारे सामने आती रही है। कभी हमने इनका उपहास किया; कभी इनसे आतङ्कित हुए; कभी इनसे पलायन किया और कभी सहयोग। इन सब के बीच धीरे-धीरे आत्म-विस्मृति की अवस्था हम पर छाती गई। ब्रिटिश शासन में, युरोप के संसर्ग से, वहाँ की सभ्यता, वैज्ञानिक के सहचरी लिये, हमारे सामने ऐसे आकर्षक रूप में उपस्थित हुई कि बस, हम देखते रह गये, आत्म-विस्मरण की जो क्रिया हजारों वर्ष पूर्व ग्रीक आक्रमणकारियों के समय से आरम्भ हुई थी वह बीसवीं शताब्दी के प्रथम बीस वर्षों में पूर्णता को प्राप्त हो चली। अब हम में से अधिकांश शिक्षित जन—स्वतन्त्र चिंतन का दावा करने वाले—केवल एक विदेशी विचार-धारा का शिथिल निश्चेष्ट अनुकरण कर रहे हैं और सब से आश्चर्य की बात यह है कि यह मानने को तैयार नहीं कि हम अनुकरणशील हैं और स्वतंत्र चिंतक

कहकर केवल आत्म-वञ्चना कर रहे हैं। अपने मूल्याधारों को छोड़कर हमने विदेशी मूल्याधारों को, बिना स्वतन्त्र परीक्षण और प्रयोग के, अपना लिया है। आज शिक्षित समाज में भारतीय सभ्यता की परम्परा के प्रति जो उपेक्षा है, उसका प्रधान कारण यही है कि हमारे सामने जो विदेशी चीज़ें, विदेशी विचार-धाराएँ, विदेशी उपकरण आये उनको अपनी कसौटी पर परखने की जगह उनकी कसौटी पर हमने अपने को—अपनी चीज़ों को परखना शुरू कर दिया। स्पष्ट है कि उस कसौटी पर हमारी चीज़ें कच्ची उतरने ही वाली थीं; जैसे हमारी कसौटी पर उनका कच्चा उतरना अनिवार्य था। समाज, देश सबके लिए यह एक भयानक आपत्ति की बात हमारे यहाँ घटित हो रही है। किसी चीज़ के बाहरी रूप से ही हमारा आकर्षण-अपकर्षण होता है। उसके मूल में पैठकर, रूप और नाम से परे रहकर, देख सकने की शक्ति का लोप होता जा रहा है।

स्त्रियों की समस्याओं पर भी विचार करने की नवीन शैली में यही दोष है। कहा जाने लगा है कि पति-भक्ति का आश्रय स्त्रियों की परतन्त्रता को स्थायी रूप देने के लिए लिया गया। इस तरह स्त्रियों को भड़काया जा रहा है, और भड़काने वाले खुद स्त्रियों को स्वतन्त्र बनाने की जगह उन्हें अपने भोग और मनोरञ्जन की सामग्री बनाते जा रहे हैं। स्त्रियों के प्रति हमारी भोगमूलक प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं; आज की नारी और चाटुकारिता से उसे पथभ्रष्ट करने वाले लोगों का लक्ष्य है—'रमणीत्व न कि मातृत्व'। अत्यन्त आधुनिका के लिए पति केवल जीवन की सुविधाएँ जुटाने वाला श्रमिक या मनोरञ्जन की सामग्री

मलती, उसे स्नान कराती, कपड़े पहनाती तथा भोजन कराती थी। उसको कफ तथा मल-मूत्र को उठाने में उसे कोई हिचकिचाहट न होती थीं; वह घावों को धोती और सदा मीठी बातें करके उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करती थी।

स्त्री साक्षात् लक्ष्मी थी। अत्यन्त मृदुता और विनय के साथ वह पति की सेवा करती थी, पर पूर्व संस्कारों के कारण समझिये या भयानक रोग से पीड़ित होने के कारण समझिये, उसके पति कौशिक ब्राह्मण का स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा हो गया था। वह क्रोध की साक्षात् मूर्ति था; सदा अपनी स्त्री को डाँटा करता था। स्त्री उसकी गलतियों को हँसकर सह लेती थी और इस वीभत्स रूप वाले पति का सब प्रकार सम्मान करती थी। मजा यह कि, यह ब्राह्मण न केवल क्रोधी वरं कामी भी था। यद्यपि उसका शरीर जीर्ण हो रहा था, और पाँव से चलने में भी वह असमर्थ था, तो भी वासनाओं से उनका हृदय पूर्ण था। एक दिन वह अपने घर बैठा हुआ था कि देखा, सामने की सड़क से एक अत्यन्त रूपवती वेश्या चली जा रही है। उसकी पत्नी भी वहीं बैठी थी। कौशिक उस पर लुब्ध हो गया। रात को उसने अपनी पत्नी से कहा—'मुझे उस वेश्या के घर ले चलो; मुझे उसके पास तक पहुँचाओ, वह मेरे मन में बस रही है। सबेरे मैंने उसे देखा था; अब रात हो गई है पर जब से मैंने उसे देखा है तब से वह मेरे मन से नहीं निकली। यदि वह कोमलाङ्गी सर्वाङ्ग-सुन्दरी कामिनी मुझे न मिलेगी तो तुम मुझे जीता न पाओगी।'

ब्राह्मण की पत्नी पति की बातें सुन कर बड़ी दुखी हुई। कामातुर

पति के प्रति उसके मन में घृणा नहीं बल्कि दुःख और दया उपजी। पर पति के जीवन के रक्षा तो उसे करनी ही थी। दुखी मन से उसने कमर कसी, साथ में वेश्या को देने के लिए पर्याप्त धन लिया और चूँकि पति चल नहीं सकता था इसलिए उसे अपने कन्धे पर चढ़ा कर वह धीरे-धीरे चली।

पत्नी के कन्धे पर चढ़ा हुआ वह ब्राह्मण रास्ते में शूल से कराह रहे माण्डव्य नामक ब्राह्मण को अंधेरे में चोर के डर से, जबर्दस्ती अपने साथ ले चला। माण्डव्य को गहरी पीड़ा हो रही थी इसलिए उसने क्रोध करके कोढ़ी कौशिक से कहा—

'मैं दुखी और पीड़ित हूँ; तुम मुझे इस तरह जबर्दस्ती चलाकर व्यर्थ कष्ट दे रहे हो। इसलिए हे पापात्मा, नराधम! सूर्योदय होते ही तुम मृत्यु को प्राप्त होगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। सूर्य को देखते ही तुम्हारे प्राण छूट जायँगे।'

इस भयंकर शाप को सुन कर कोढ़ी कौशिक ब्राह्मण की पत्नी बड़ी दुखी हुई। बोली—'यदि ऐसा है तो सूर्य ही उदय न होगा।'

इस पतिव्रता के वचन कैसे झूठ होते? सूर्य का उदय बहुत दिनों तक नहीं हुआ। लगातार रात रहने लगी। इससे देवता डर गये और चिन्ता करने लगे कि सूर्योदय न होने से सब पुण्य कार्य बन्द हो जायँगे—न वेदपाठ होगा, न तर्पण होगा, न यज्ञ होगा, न होम होगा और संसार का नाश हो जायगा। दिन-रात की व्यवस्था बिना महीनों और ऋतुओं का भेद भी जाता रहेगा। मास और ऋतु के न होने से दक्षिणायन-उत्तरायण-भेद भी लुप्त हो जायगा। दक्षिणायन-उत्तरायण

के ज्ञान बिना वर्ष का ज्ञान फिर कैसे होगा ? पतिव्रता के कहने से सूर्य का उदय नहीं हो रहा है। सूर्योदय के न होने से स्नानादि क्रियाएँ नहीं हो सकतीं, न अग्नि का आधान हो सकता है। इनसे यज्ञादि का अभाव हो जायगा। जब चर-अचर समस्त संसार अंधकार में डूब जायगा तब सब प्राणी नष्ट हो जायँगे।'

देवता रात-दिन इसी प्रकार की चिंता, चर्चा करते थे। अन्त में वे ब्राह्मण के पास गये। ब्राह्मण ने उनकी बात सुनकर कहा—'पतिव्रता की महिमा से सूर्य नहीं उदय हो रहा है। सूर्य के उदय न होने से मनुष्यों की और तुम सब देवताओं की हानि हो रही है। इसलिए यदि तुम चाहते हो कि सूर्य उदय हो तो जाकर अत्रि मुनि की पतिव्रता पत्नी अनुसूया को प्रसन्न करो।'

तदनुसार देवों ने जाकर अनसूया को विनय से प्रसन्न किया। प्रसन्न होकर अनुसूया ने कहा कि 'जो वर चाहो मांगो।' तब देवों ने कहा कि 'हम चाहते हैं कि जैसे पहले दिन होता था, वैसे फिर होने लगे।'

अनुसूया बोलीं—'पतिव्रता को महिमा नष्ट नहीं हो सकती। उसका वचन झूठा नहीं हो सकता। तथापि मैं उस साध्वी को किसी तरह मना कर फिर से दिन होने का प्रबन्ध करूँगी जिससे पूर्ववत् रात-दिन होने लगे और उसका पति भी शाप के कारण नाश को प्राप्त न हो।'

देवों को आश्वासन देकर अनुसूया उस पतिव्रता के पास गईं और कुशल-मंगल पूछती हुई बोलीं—'हे कल्याणी ! तुम अपने पति की सुखदायिनी हो। तुम्हारा समय सुख से तो बीत रहा है ? मैं समझती हूँ कि तुम अपने पति को समस्त देवों से अधिक मानती हो। मैंने पति-सेवा

से बड़े से बड़े फल प्राप्त किये मैं। पति-सेवा स्त्री को सम्पूर्ण इच्छित फल प्राप्त हो सकते हैं। जिस पुण्य को पुरुष बड़े दुःख से उपार्जित करते हैं उसका आधा फल स्त्रियाँ केवल पति-सेवा के कारण ही पा जाती हैं। स्त्रियों के लिए न अलग यज्ञ है, न अलग श्राद्ध है, न अलग व्रत-उपवास है। पति-सेवा से ही उनको इच्छित लोक प्राप्त होते हैं। इसलिए साध्वी! तुम पति की सेवा में सदा मन लगाया करो, क्योंकि पति ही के लिए परम गति है।'

अत्रिपत्नी अनुसूया की ये हितकर बातें सुनकर उस स्त्री ने उसका यथोचित सत्कार किया; फिर बोली—मैं यह जानती हूँ कि स्त्री के लिए पति के समान कोई दूसरी गति नहीं है। पति के प्रति प्रेम इहलोक और परलोक दोनों के लिए हितकारी है। पति के प्रसन्नता से स्त्री दोनों लोकों में सुख पाती है क्योंकि स्त्री का देवता पति ही है। आप कृपा-पूर्वक मेरे यहाँ पधारी हैं। कृपा करके आज्ञा कीजिए कि मैं अथवा मेरे पति आपके लिए क्या कर सकते हैं?'

अनुकूल अवसर पाकर अनुसूया ने कहा—'तुम्हारे कहने से सूर्य के उदय नहीं होता, इससे दिन और रात का भेद न होने से देवों के सब सत्कर्मों का लोप हो गया है। इसलिए देवगण पहले की तरह फिर रात और दिन की व्यवस्था चाहते हैं। मैं इसीलिए तुम्हारे पास आई हूँ। ध्यान से मेरी बात सुनो—दिन होने से यज्ञादि नहीं हो सकते यज्ञ न होने से देवता तृप्त नहीं होते। दिन न होगा तो सब धार्मिक कार्यों का उच्छेद हो जायगा। यज्ञादि धार्मिक कार्यों के नष्ट हो जाने से वृष्टि का लोप हो जायगा। और वृष्टि के न होने से संसार ही नाश हो जायगा।

इसलिए हे देवि ! धैर्य से जगत् का इस विपत्ति से उद्धार करो। कृपा-कर प्रसन्न हो, जिसमें सूर्य फिर पहले की तरह उदय होने लगे।'

ब्राह्मणी बोली—'हे देवि ! माण्डव्य ने क्रोध करके मेरे पति को शाप दे दिया है कि सूर्योदय होने पर तुम विनाश को प्राप्त होगे। तब मैं क्या करूँ ?'

अनुसूया बोलीं—'यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हारे पति का शरीर फिर पहले-जैसा कर दे सकती हूँ। मैं भी पतिव्रताओं की महिमा का आराधन करने वाली हूँ, इसलिए तुम्हारा सम्मान करती हूं।'

पतिव्रता की स्वीकृति पर तपस्विनी अनुसूया ने आधीरात को अर्घ्य देकर सूर्य का उपस्थान किया। अनुसूया के उपस्थान करने पर खिले हुए रक्त कमल की तरह लाल-लाल सूर्य का बड़ा मण्डल हिमालय की चोटी पर उदित हुआ। सूर्य-दर्शन के साथ ही ब्राह्मणी का पति प्राण-रहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। ब्राह्मणी ने गिरते हुए पति को हाथों से पकड़ लिया।

अनुसूया ने कहा—'हे देवि ! तुम चिन्ता मत करो। देखो, पति की सेवा से मैंने कैसी शक्ति पाई है—ऐसी शक्ति जो दीर्घकाल तक तपस्या करने से भी नहीं मिल सकती। यदि पति के समान दूसरे पुरुष को मैंने कभी न देखा हो तो मेरे इस सत्य के प्रभाव से यह ब्राह्मण रोग से रहित होकर फिर युवा हो जाय और पत्नी-सहित सौ साल तक जिये। यदि मैं सदा मन, वचन और कर्म से पति की आराधना में लगी रहती हूँ तो मेरी इस पति-भक्ति के प्रभाव से यह ब्राह्मण फिर जीवित हो जाय।'

इस पर वह ब्राह्मण नीरोग और युवा होकर उठ खड़ा हुआ और अपनी प्रभा से देवता की तरह गृह को प्रकाशमान करने लगा। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी, देवों ने वाद्य बजाये और प्रसन्न होकर अनुसूया से कहा—'हे हमारा कल्याण करने वाली अनुसूया! तुमने सूर्य का फिर से उदय कराके बड़ा भारी काम किया है। तुम वर माँगो।'

अनुसूया बोली—'यदि ब्रह्मा-सहित सब देव मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं चाहती हूँ कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश मेरे पुत्र हों और मैं पति सहित क्लेश से मुक्ति प्राप्त करने के लिए योग को प्राप्त करूँ।'

देवगण 'एवमस्तु' ( ऐसा ही हो ) कहकर और अनुसूया से आज्ञा लेकर चले गये।

\+ + +

यह एक मार्मिक कथा है। इसमें असङ्गतियाँ भी हैं पर मुझे उनसे प्रयोजन नहीं। कथा के मूल में जो तत्व है, उसी से मेरा काम चल जाता है। इसमें नारी कहीं पति के भोग की सामग्री—उपेक्षित, पीड़ित और अपदार्थ रूप में नहीं आई है। क्या इसमें कहीं भी उस अपदार्थ नारी की गन्ध है जो अशक्ता, महिमाहीन, पुरुष की वासना की दासी के रूप में दिखाई पड़ती है? निश्चय ही पत्नी पति में केन्द्रित है पर यहाँ पति उसके लिए धर्म के एक प्रतीक के रूप में है। उसकी आस्था ने पति में देवत्व की प्राण-प्रतिष्ठा की है—ठीक वैसे ही, जैसे एक साधारण वस्तु में प्रेम और भावना के समावेश से अपूर्व शक्ति पैदा हो जाती है। स्पष्ट ही यहाँ नारी केवल शरीर-भोग को लेकर जीवन के स्वप्नों की रचना करनेवाली नहीं है; यहाँ वह मानव-जीवन के रूपाकर्षण से

ऊपर उठी, अपनी महिमा से पुरुष-समाज का गौरव बढ़ानेवाली, मानव, जीवन के अमृत प्रेम में छकी हुई है। यह वह नारी है जिसने मृत्यु का उपहास किया है, जिसने क्षणिक जीवन को अमरता का आश्वासन प्रदान किया है। कौन कब ऐसी नारी की उपेक्षा कर सका है? भारतवर्ष के साहित्य में इस प्रकार के जितने चित्र मिलते हैं सब में एक ही सत्य की बार-बार घोषणा की गई है। और वह सत्य है शरीर की अधोगामी वासनाओं को पददलित करके समाज और धर्म के ऊपर प्रकाश की, दीप-शिखा-सी उठती नारी की महिमामयी मूर्ति—वह नारी जो कुण्ठित नहीं है, विचलित नहीं है, अशक्त नहीं है, अपदार्थ नहीं है; जिसे पुरुष की कृपा और दया की आवश्यकता नहीं और जिसकी उपेक्षा होते ही पुरुष का पतन हुआ है और समाज में भयङ्कर विस्फोट हुए हैं।

---

[ ७ ]

# क्या प्रतिभावान व्यक्ति अच्छे और सफल पति होते हैं ?

मेरे सामने कानपुर के एक साहित्य-प्रेमी मित्र का एक पत्र पड़ा है, जिसमें वह दो प्रतिभाशाली हिन्दी साहित्यकारों के घरेलू जीवन के विषय में कुछ सुनी-सुनाई बातों की चर्चा करने के पश्चात् पूछते हैं कि क्या ये घटनाएँ सत्य हैं और सत्य हैं, तो क्या आप बता सकते हैं कि इनका दाम्पत्य जीवन असफल और दुःखद क्यों है ?

मैं इन मित्र को तो लिख चुका हूँ कि भई, तुमने एक बेढब सवाल पूछा है। इन साहित्यकारों के अन्तःपुर में प्रवेश करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं है और न मैं इसके लिए उत्सुक ही हूँ। परदा तोड़कर बाहर आ जाने के बाद भी नारी कुछ ऐसी सरल-सी चीज नहीं बन गई है कि उसको लेकर पुरुष ने अथवा पुरुष-विशेष ने जो संसार बनाया है, उसकी समस्याओं पर एकाएक राय दे दी जा सके। फिर इस प्रश्न के मूल में जासूसी की जो प्रवृत्ति है वह कुछ बहुत सुरुचिपूर्ण नहीं है। और सुरुचि का प्रश्न छोड़ दें, तो भी उसमें मानव को उसकी सफलता-असफलता के साथ ग्रहण कर सकने में अक्षमता का जो भाव है, वह

कुछ बहुत श्रेयस्कर नहीं। इसमें जीवन-युद्ध में लगे हुए और उसमें कभी गिरते-पड़ते, कभी उठते और फिर गिर पड़ते मानव के प्रति एक व्यंग है—कुछ ऐसा एक अहङ्कार, जो प्रश्नकर्ता को ऊँचा नहीं उठायेगा।

पर मैं मानता हूँ कि इतना कहने पश्चात् भी प्रश्न का एक पहलू रह जाता है, जिस पर विचार करने की आवश्कता है। जिस प्रसङ्ग का वर्णन प्रश्नकर्ता ने दो हिन्दी-साहित्यकारों के विषय में किया है, वे गलत हो सकते हैं; सही भी हो सकते हैं और सबसे ज्यादा सम्भव यह है कि गलत और सही दोनों एक साथ हों। दोनों दशाओं में अतिशयोक्ति का पुट तो अवश्य होगा। पर मिथ्या के बीच भी एक महत्व पूर्ण प्रश्न की ओर इसमें जो संकेत है, वह अपने तीव्र व्यंग के साथ समाज से उत्तर और समाधान चाहता है।

प्रश्नकर्ता के प्रश्न से जो सामान्य ध्वनि निकलती है, वह यह है कि क्या प्रतिभावान व्यक्ति अच्छे और सफल पति होते हैं ? प्रश्न कुछ अटपटा है, पर यह प्रत्येक देश में समय-समय पर उठता रहता है. और आज भी उठता है। वर्तमान समय में संसार असाधारण विद्रोहपूर्ण अवस्था से गुजर रहा है, इसलिए प्रश्न कुछ जटिल हो गया है।

अपवाद को छोड़कर कहना चाहूँ तो मैं यह कह सकता हूँ कि प्रतिभा के साथ दाम्पत्य जीवन की सफलता का कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः दाम्पत्य जीवन की एक अलग कला है। जो उस कला का व्यवहारिक ज्ञान नहीं रखता, जिसे यह मालूम नहीं है कि किस अवस्था में और कैसे उसका उपयोग करना चाहिए, वह दाम्पत्य

जीवन में सफ़ल नहीं हो सकता। फिर इस कला की जानकारी होने से ही कुछ नहीं होता। उन सौ आदमियों में से, जो विवाह करते हैं, ६६ तो विवाहित जीवन की मोटी-मोटी बातों को जानते हैं, फ़िर भी यह कहना कठिन है कि उनका दाम्पत्य जीवन सफल होता है। वस्तुतः हमारी सारी कठिनाइयाँ इस बात से पैदा होती है कि हम जो कुछ अच्छे जीवन की शर्तों की शक्ल में जानते हैं, उसका उपयोग अपने दैनिक जीवन में किस चतुराई से करते हैं। जीवन के सुख बहुधा बड़े-बड़े सिद्धान्तों पर नहीं, छोटी-छोटी और देखने में महत्वशून्य बातों पर निर्भर करते हैं। और जो बात जीवन के अन्य क्षेत्रों में सुख एवं सफलता के लिए जरूरी है, वह विवाहित जीवन में और भी जरूरी है।

वैसे यह जरा-सी बात है, पर इस बात से उस सवाल पर रोशनी पड़ती है, जिसे लेकर हम चले हैं। इस रोशनी में हम देखकर—समझ कर इतना कहना चाहेंगे कि प्रायः प्रतिभावान व्यक्ति दाम्पत्य जीवन में सफल नहीं होते।

पहली बात तो यह कि विवाहित जीवन रमणीयता के संस्कार का जीवन है। पति और पत्नी जीवन में एक सखी या एक सखा चाहते है। यदि पति या पत्नी को विवाहित जीवन में इसका कभी अभाव न प्रतीत हो, तभी उनका जीवन सुखी हो सकता या कहा जा सकता है और उसमें सफलता का सन्तोष उत्पन्न हो सकता है। अपनी केन्द्रोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण नारी को सदा यह अभाव अधिक अनुभव होता है। उसका जीवन पति में, गृह में, बच्चों में परिपूर्ण हो उठने के लिए विकल है। जीवन के युद्ध में उसके साथी बहुत थोड़े होते हैं और प्रति दिन

प्रायः एक सा, थका देनेवाला जीवन का लम्बा मार्ग वैचित्र्य से रहित होता है। और इस पर हँसते हुए चलते रहने के लिए नारी को सदा एक मधुर अवलम्ब की आवश्यकता बनी रहती है। इस अवलम्ब की निरन्तरता की अनुभूति नारी-जीवन के सन्तोष और सुख का सब से प्रधान कारण है और इसमें अनियमितता, विशृङ्खलता की अनुभूति उसके जीवन की अन्य सब सुविधाओं को मिट्टी कर देती है। उसका जीवन अभाव से भर जाता है; एक सूनापन आ जाता है और एक घातक उदासी छा जाती है।

स्पष्ट है कि कोई प्रतिभावान व्यक्ति जीवन की ब्योरे की छोटी-मोटी बातों में रस नहीं ले सकता और रस ले, तो भी उन पर समय एवं शक्ति खर्च करना, उन्हें उपयुक्त महत्व प्रदान करना प्रायः उसकी क्षमता के बाहर होता है! वह जीवन के महान् रहस्यों में इतना डूब जाता है अथवा अपने प्रिय कार्य वा विषय के साथ उसकी इतनी तल्लीनता होती है कि विवाहित जीवन अथवा गृह-जीवन की आवश्यकताओं और जिम्मेदारियों की ओर वह बहुत कम ध्यान दे सकता है। उसका जीवन एक मिशनरी का जीवन होता है; वह किसी विद्या, किसी विज्ञान, किसी विषय, कार्य वा अन्वेषण के प्रति आत्मार्पित-सा होता है। एक वैज्ञानिक के पास इतना समय नहीं होता कि वह रोते हुए बच्चे को उठा ले, उसे चुमकारे और पत्नी को जरा दम ले लेने दे। एक दार्शनिक इस तरफ ध्यान नहीं देता कि उसकी पत्नी क्या खाती है और पहनती है। गहरी प्रतिभा या बुद्धि वाले व्यक्ति प्रायः केन्द्रोन्मुखी प्रवृत्ति के लोग होते हैं—वे किसी पदार्थ-विशेष में ध्यानस्थ और केन्द्रित होकर काम करते हैं।

इस तल्लीनता से उनका मानसिक आनन्द और स्फूर्ति बनी रहती है; और पत्नी के प्रति विह्वलता के भाव शान्त हो जाते हैं।

यह बात केवल बौद्धिक काम करने वाले गहरी प्रतिभा के व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है। आत्यन्तिक निष्ठापूर्वक किसी भी काम में लगे हुए लोगों के लिए भी यही बात है। अनेक राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं, देश-भक्तों और साहित्यकारों पर यह बात लागू होती है। मेरे एक मित्र, जो देश के कार्य में पड़े हुए हैं, प्रायः विनोद में कहा करते हैं कि जो स्त्री देशभक्त से विवाह करती है, वह ग़लती करती है। ऐसे आदमियों से विवाह करना ग़लत हो या सही, यह एक जुदा सवाल है। पर इसमें तो सन्देह की कोई गुञ्जाइश नहीं है कि ऐसे लोगों से विवाह कर जो स्त्री गृहस्थ-जीवन के सुख की कल्पना करती है, वह भ्रम में होती है या है, और जितनी जल्द यह भ्रम टूट जाय, नारी अपना कल्याण करेगी। वह खुशी से ऐसे आदमी से विवाह करे, यदि वह समझती है कि वह आदमी समाज-सेवा के एक ऊँचे काम में लगा हुआ है और उसके कार्य में हाथ बँटा कर उसका नारीत्व गौरवान्वित होगा। ऐसी नारियों का भी विवाह के इस क्षेत्र में स्वागत है, जिनमें कर्त्तव्य के भाव की अत्यधिक प्रधानता दे और जिनकी प्रेम की भूख ने उनके जीवन को विकल, विह्वल और अपङ्ग नहीं कर डाला है। ऐसी स्त्रियाँ, जो पति के प्रति लालसाभरी आँखों से नहीं देखतीं, जिनमें पति से अपनी सेवा एवं प्रेम का प्रतिदान चाहने का भाव नहीं है, वे अपने को कुछ अधिक दुखी न अनुभव करेंगी।

पर दुर्भाग्यवश ऐसी स्त्रियाँ बहुत कम होती हैं। यह भी कहा जा

सकता है कि ऐसी स्त्री केवल कवि की कल्पना का एक चित्र-मात्र है। मुझे अनेक देशभक्त, तेजस्वी, त्यागी और अपने पतियों के सेवाव्रत में लगी हुई महिलाओं को जानने-सुनने और निकट से देखने का भी अवसर मिला है; पर ऐसी एक भी नारी मुझे न मिली, जो अपने गृहस्थ-जीवन के स्वप्नों को बिल्कुल भूल गई हो। हृदय के किसी कोने में एक विषाद् का भाव, दलित होकर भी, पड़ा रहता है और नासूर की तरह सहानुभूति, अभाव या व्यथा की चोट पाते ही उसमें से रक्तविन्दु निकलने लगते हैं। प्रायः एकान्त में जब नारियाँ परस्पर मिलती हैं तो दिल की पीड़ा बातचीत में निकल आती है। ऊपर से अत्यन्त सन्तुष्ट-सी जान पड़ती हुई स्त्रियों के मुँह से भी, अपनी ही स्थिति की स्त्रियों के सामने ऐसे आर्त्त वचन निकलते हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। ऐसी नारियों के उदाहरण सार्वजनिक क्षेत्र में भी पर्याप्त हैं।

टाल्सटाय को हम केवल एक महान् चिन्तक के रूप में जानते रहे हैं, वरं एक नैतिक साहस के प्रवक्ता के रूप में भी हमने उसकी कल्पना कर रखी थी और हम में से अधिकांश आज भी करते हैं; पर जब उसकी स्त्री की डायरी प्रकाशित हुई, तो यह देखकर लोग स्तब्ध रह गये कि उसका विवाहित जीवन कितना दुःखपूर्ण था। यह डायरी उसकी स्त्री की असफलता एवं अभाव के अनुभव में अश्रु-विमोचन मात्र है।

पर जो बात टाल्सटाय के विषय में सत्य है, वह थोड़े या बहुत, किसी न किसी अंश में, सभी श्रेष्ठ चिन्तकों, प्रतिभावनों एवं आत्यन्तिक निष्ठापूर्वक कार्य-विशेष में लगे हुए लोगों के विषय में ठीक है।

यदि इनकी स्त्रियाँ भी अपनी डायरियाँ लिखें अथवा उनके दिल पर पड़े हुए गोपीनयता के परदे यदि एकाएक हटा दिये जायँ, तो बहुत करके हम वही चीज पायेंगे, जो श्रीमती टाल्सटाय की डायरी में पाते हैं।

पर इसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। न यह किसी प्रकार प्रतिभावान पुरुषों की ईमानदारी पर 'सेन्सर'—आक्षेप—ही कहा जा सकता है। इसका यह भी अर्थ नहीं निकल सकता कि ऐसे कार्य-विशेष के प्रति अर्पित एवं तल्लीन व्यक्ति भले नहीं होते या वे जान-बूझ कर अपनी पत्नियों की चिन्ता के कारण होते हैं अथवा उनकी उपेक्षा करते हैं। बहुधा पति बड़ा भला होता है। उसके सदुद्देश्य एवं सज्ज-नता पर प्रश्न का चिह्न नहीं लगाया जा सकता। वह यह भी चाहता है कि मेरी पत्नी सुखी रहे और उसे किसी प्रकार की असुविधा न उठानी पड़े। पर इस सदिच्छा का जीवन के ठोस तथ्यों पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। जीवन की व्यावहारिक कठिनाइयाँ और समस्याएँ सदिच्छा से ही हल नहीं हो सकतीं। इसलिए पति की सदाशयता को ही लेकर स्त्री तृप्त नहीं हो सकती;—वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और समय के प्रत्येक अंश में इस सहायता की अभिव्यक्ति चाहती है। वह चाहती है कि उसके पति का हृदय 'बैरोमीटर' की तरह उसकी प्रत्येक धड़कन, उसके प्रत्येक दुःख-सुख को अङ्कित करे। वह उसे उस दर्पण के समान चाहती है, जिसमें अपने को देख और पा सकती हो। वह जीवन के मार्ग पर अपना एक चिर-स्थायी, एक विशेष और प्रधानतः उसी के लिए अर्पित एवं सम्पूर्णतः उसी के लिए सुरक्षित साथी, चाहती है। अपने से बहुत ऊँचे और श्रेष्ठ क्षेत्र में उड़नेवाले पति के साथ चलते

हुए उसका दम टूट जाता है—क्योंकि इसमें अनुगमन, अनुगमन मात्र उसके पल्ले रह जाता है; जब वह वस्तुतः पथ-प्रदर्शक के साथ ही सब अर्थों में एक सखा भी चाहती है। इसीलिए नारी असाधारण पुरुष को पाकर उसकी ओर एक भय-मिश्रित आदर के साथ देखती है—उसके प्रति भक्ति से उसका हृदय पूर्ण हो सकता है, पर वह अपनेपन के उस अधिकारपूर्ण भाव से वञ्चित रह जाती है, जिसके बल पर नारी जीवन के कष्टों को सहन करती है। उसका जीवन ऐसे पति को पाकर धन्य भले ही अनुभव करे, पर उसमें अपनी सार्थकता की अनुभूति नहीं पैदा होती—अपने अभाव का भाव बना रहता है।

अमेरिका की एक स्त्री ने एक बार लिखा था कि 'मेरे विवाह को सोलह वर्ष हो गये हैं, पर मुझे अपने विवाहित जीवन की सफलता की कभी अनुभूति नहीं हुई। मेरे पति सच्चरित्र और कृपालु हैं! परन्तु वह अपने अध्ययन और चिन्तन के कार्य में ही अधिक समय लगे रहते हैं। वह न कभी मेरी बुराई करते हैं, न कभी मेरी तारीफ करते हैं; शाम को घर पर ही रहते हैं, पर एकान्त में कुछ सोचा करते हैं।'

चिन्तनशील व्यक्ति की पत्नी का यह चित्र बहुत-कुछ सार्वदेशिक है। इतना ही कि इसमें किञ्चित् पश्चिमी रंग है, पर तथ्य की जो बात है, वह पूर्व और पश्चिम सब के लिए उतनी ही ठीक है। जो बातें आध्यात्मिक दृष्टि से मनुष्य को ऊँचा उठाने वाली हैं, वे प्रायः विवाहित जीवन की सफलता में बाधक सिद्ध होती हैं। ऊपर के पत्र में अमेरिकन महिला अपने पति के—'वह न कभी मेरी बुराई करते हैं, न कभी मेरी तारीफ करते हैं'—अनासक्ति-जैसे महान गुण का कुछ आदर नहीं कर पाती है।

उनकी सच्चरित्रता और दयालुता भी उसके लिए व्यर्थ है। जिस चीज के लिए उसका मन उद्विग्न और विकल है, वह पति का साहचर्य है। उसके अभाव में वह अपने को अकेली पाती है और अपने विवाहित जीवन को असफल अनुभव करती है।

ऊपर मैंने आध्यात्मिक दृष्टि और विवाहित जीवन के हितों के विरोध की जो बात लिखी हैं, उससे मेरा यह अभिप्राय नहीं कि विवाहित जीवन की जिम्मेदारियों को निभाते हुए कोई नैतिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता। मेरा कहना केवल यह है कि ज्यों-ज्यों व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित होता जायगा, त्यों-त्यों उसकी दृष्टि अन्तःमुखी होती जायगी—बाहरी जगत् के प्रति उसकी आसक्ति घटती जायगी और उसे अपने सन्तोष एवं आनन्द के लिए दूसरे के अवलम्ब की कम से कम आवश्यकता पड़ेगी। इसका भी परिणाम यही होगा कि दाम्पत्य जीवन में उसकी वह तल्लीनता, निमग्नता, न रह जायगी।

बुद्ध से रामतीर्थ तक और टाल्सटाय से उन हिन्दी साहित्यकारों तक, जिनका जिक्र शुरू में किया गया है, प्रायः एक ही ढंग की कथा है। तीव्र आध्यात्मिक, नैतिक या बौद्धिक प्रतिभा के व्यक्ति जीवन की साधारण पगडंडी से नहीं चल सकते। वे ऊँचाइयों या गहराइयों में केन्द्रित और डूबे हुए, अपने को खोकर, अपने अन्तर के आनन्द को जगाते हुए अथवा श्रेष्ठतर अतृप्ति को लेकर, चलते हैं और स्पष्ट है कि इस प्रकार की असाधारण अवस्थाओं में गृह जीवन की जिम्मेदारियों के प्रति वे पूर्णतः सजग नहीं रह सकते।

असल बात तो यह है कि विवाहित जीवन औसत बुद्धि एवं प्रवृत्ति के आदमियों के लिए है। जो औसत में ऊँचे या नीचे हैं, वे इसमें प्रायः असफल होते हैं—यहाँ तक कि उनका असफल होना स्वाभाविक भी कहा जा सकता है। विवाहित जीवन जब साधारण आदमी को उसकी सम्पूर्ण प्रवृत्तियों के विकास का अवसर देता है, तब पहले से ही पर्याप्त रूप से उन्नत एवं विकसित के लिए उसकी उपयोगिता बहुत कम हो जाती है। वैसे साधारण व्यक्ति के लिए यहाँ कर्त्तव्य भी है, प्रेम भी है। त्याग भी है, योग भी है, अनासक्ति है और आसक्ति भी है। सब से अधिक अपने ऊपर संयम के अभ्यास की आवश्यकता है। पर जो भी है और जितना भी है, वह औसत दर्जे के आदमियों के लिए है। और औसत दर्जे की प्रवृत्ति और मनोवृत्ति लेकर ही यह विवाहित जीवन सुखी और सफल हो सकता है। विवाहित जीवन प्रतिक्षण समझौतों का जीवन है। यह एक छोटा सा समाज है और इसीलिए सामाजिक जीवन की सुविधाएँ औरकठिनाइयाँ सब इसमें से वर्तमानहैं। प्रतिभावान व्यक्ति प्रायः व्यक्तिवादी होते हैं; जो अपने को समाजवादी कहते हैं, वे भी आत्यन्तिक रूप से व्यक्तिवादी होते हैं। वे समाज पर अपने को छोड़ नहीं सकते; समाज से अपने अनुकूल चलने की आशा रखते हैं। इसलिए जीवन में समझौते की प्रवृत्ति उनमें कम होती है। वे बार-बार अपने चिन्तन के ऊँचे स्वर से नीचे उतरना पसन्द नहीं करते।

इसके विरुद्ध विवाहित जीवन वास्तविकताओं का जीवन है। इसमें न्याय और अधिकार की अपेक्षा सहनशीलता और 'टैक्ट'—चतुराई—की आवश्यकता अधिक है। यह याद रखो कि औसत नारी प्रेम के

आध्यात्मिक पक्ष पर उपदेश या प्रवचन सुनकर तृप्त नहीं हो सकती। वह चाहती है कि तुम उसके जीवन की आशाओं पर तरङ्गित हो; उसके दुःखों में रोओ; उसके आनन्द में विकसित हो, और उसको अपना समझ कर अङ्गीकार करो और उसे भी तुमको 'अपना' समझने का अवसर दो। वह मानती है कि पति के लिए जीवन के सम्पूर्ण कर्तव्य उसको लेते हुए हैं—उसके अतिरिक्त नहीं हैं।

एक नारी है। गृहस्थ-धर्म के निर्वाह में उसका समय जा रहा है। वह घर का प्रबन्ध करती है; वह बच्चों का पालन करती है; वह हज़ार ऐसे काम कर रही है जो बहुत जल्द मनुष्य को थका देते हैं। ऐसी पत्नी के लिए यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि वह अपने वैज्ञानिक पति के निरन्तर किसी सिद्धान्त की खोज में लिप्त रहने से खीझ उठे। उसके लिए उस महान् कवि पति की क्या आवश्यकता, जो बच्चों के रोदन से अप्रभावित, अपनी महती कल्पनाओं में डूबा हुआ है, अथवा जो भयङ्कर गर्मी में आग के आगे फुंकती हुई पत्नी की अवस्था पर लक्ष्य न कर हिमालय की ऊँचाइयों पर, कल्पना के पंखों के सहारे उड़ रहा है। उसके लिए उस महान् लेखक की क्या आवश्यकता रह गई है, जो साहित्य को एक अमर ग्रन्थ प्रदान करने में इतना केन्द्रित है—इतना निमग्न है कि उसे एक पत्नी भी है, यह प्रायः भूल चला है? अवश्य ही ऐसे लोग एक औसत आदमी की अपेक्षा मानव जाति के लिए अधिक स्फूर्तिप्रद एवं स्पष्टतः कल्याणकारी सन्देश छोड़ जाते हैं—अवश्य ही उनके कारण समाज का कल्याण होता है, परन्तु उस औसत नारी की तृप्ति कैसे हो सकती है जो उसके लिए अपना जो कुछ

प्रिय था, सब छोड़कर आई है—जिसका संसार उसको लेकर है, जिसकी दुनिया का केन्द्र पति है। इस आकर्षण-शक्ति से विशृङ्खल हो उसकी आशाओं का संसार नष्ट हो जाता है। वह अकेली रह जाती है। उसका सन्तुलन नष्ट हो जाता है।

वह अपना साधारण पति चाहती है। वह पति जो उसके कष्टों का, उसकी सेवाओं का केवल मूक साक्षी न हो वरन् जो उन्हें अनुभव करे। वह सहचर्य और अनुभूति का प्रकाशन भी चाहती है। मैं ऐसे कई पतियों को जानता हूँ जो अपनी पत्नियों को हृदय से चाहते हैं, जिनका प्रेम बहुत परिष्कृत और असाधारण है; और जो इसीलिए उसमें प्रकाशन और प्रदर्शन की भावना लाकर उसे रंगीन नहीं करना चाहते। पर इसमें से अधिकांश, पत्नियों के दृष्टिकोण से, असफल हैं। उनके प्रेम की उदात्तता तथा अकृत्रिमता, उनकी सफलता और विवाहित जीवन के सन्तोष की जगह उनकी असफलता का कारण बन गई है। इनमें दोष उनका नहीं; उनके स्वभाव और प्रकृति का है। विवाहित जीवन की सफलता केवल नैतिक एवं सैद्धान्तिक उच्चता पर ही आश्रित नहीं है; इससे भी अधिक वह दैनिक व्यवहार पर आश्रित है। मैं एक अत्यन्त सदाशय पति को जानता हूँ जो अपनी पत्नी को बहुत प्रेम करते हैं, पर साधारण व्यवहार में सहनशीलता एवं नम्रता की जगह अपनी रुक्षता के कारण उन्होंने लोगों पर, और अपनी पत्नी के मन पर भी, इसका बिल्कुल विरोधी प्रभाव पैदा कर दिया है। लोग समझते हैं कि इनका विवाहित जीवन असफल है। पत्नी भी असन्तोष एवं अतृप्ति का अनुभव करती है और उन सज्जन का जीवन भी इस

बात की खीझ से भर गया है कि उनके प्रेम को उनकी पत्नी बिल्कुल नहीं समझती। यों जब प्रेम भी है, सहानुभूति भी है, तब भी गलतफहमी के कारण उसका उलटा असर हो रहा है। पत्नी के सन्तोष के लिए केवल प्रेम एवं सहानुभूति ही आवश्यक नहीं; इनका बार-बार, दैनिक जीवन में, उपयुक्त प्रदर्शन एवं प्रकाशन भी आवश्यक है। माना गृहस्थी के भार से दबी हुई अपनी पत्नी के प्रति आपका हृदय सहानुभूति और दर्द से भरा हुआ है। पर जब तक आप अपनी पत्नी पर अपने कार्य एवं वाणी-द्वारा यह नहीं प्रकट करते कि उसके दुःख से आप वस्तुतः दुखी हैं और इसी चिन्ता में आपका समय जाता है कि कैसे उस बोझ को कम किया जा सकता है, तब तक आपकी सहानुभूति का कोई क्रियात्मक परिणाम नहीं होगा। एक औसत पत्नी चाहती है जब वह भोजन परस कर आपके सामने रखती है, तब आप उसके भोजन बनाने की प्रशंसा करें कि आज अमुक चीज तो बहुत अच्छी बनी है। वह चाहती है कि जब उसकी तबियत खराब हो, तो आप मृदुतापूर्वक अपनी चिन्ता उसके स्वास्थ्य के लिए प्रदर्शित करें। वह चाहती है कि जब वह घर को सजाती है तब आप उसकी व्यवस्थितता की तारीफ करें, और जब वह अच्छे कपड़े पहनती है, तब उसकी कलाप्रियता और सुरुचि की दाद दें। वह चाहती है कि आपके द्वारा इस भावना का प्रकाशन हो कि यद्यपि दुनिया में एक से एक स्त्रियाँ हैं, किन्तु आपके लिए उसके जैसी भली और उपयुक्त दूसरी कोई स्त्री नहीं है। वह चाहती है कि आप उसे अपने मनोरञ्जन एवं भ्रमण के कार्य-में शामिल करें। यद्यपि वह आपको कोई क्रियात्मक सहायता प्रदान

नहीं कर सकती; पर इतना अवश्य चाहती है कि आप अपने जीवन की चिन्ताओं में उसे शरीक करें—अपने हृदय को उसके सामने प्रकाशित करें और अपनी ओर से उसे पूर्णतः निश्चिन्त कर दें कि आप उसके हैं और वह आपकी है।

इन बातों के लिए मनुष्य को दैनिक जीवन के ब्योरे—'डिटेल्स'-में जाना पड़ता है। उसे पत्नी तथा कुटुम्बियों की प्रवृत्तियों और चित्त की अवस्थाओं—मूड्स (moods)—का अध्ययन करना पड़ता है और कई बार अभिनय भी करना पड़ता है।

स्पष्ट है कि असाधारण बुद्धि, प्रतिभा या कर्तृत्व के आदमियों को इस प्रकार की बातें उनके अपने कार्य में विघ्नकारी मालूम पड़ती हैं। अतिशय केन्द्रित व्यक्ति के लिए बार-बार अपनी विचार-श्रेणी से नीचे उतर कर आना उसे उबा देने वाला होता है। यह उससे बन नहीं पड़ता। सब से बड़ी कठिनाई उसे अभिनय में मालूम पड़ती है। गृह-जीवन में भी राजनीति की कला का प्रवेश उसके द्वारा सम्भव नहीं है।

असल बात यह है कि असाधारण व्यक्तियों का जीवन-मार्ग प्रायः विषम होता है। उनका जीवन एक साँचे में ढला या सुन्दर रूप में तराशा हुआ नहीं होता है। उनके जीवन की रेखाएँ टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं। उन्हें अनेक प्रचलित मतों, विश्वासों एवं मान्यताओं को तोड़ते-फोड़ते एवं नूतन मार्ग बनाते चलना पड़ता है। उनके जीवन में निश्चिन्तता ('सिक्यूरिटी') का अभाव होता है। जीवन एक विशेष धारा में बहता है। स्पष्टतः ऐसे व्यक्ति विवाहित जीवन व्यतीत करने के उपयुक्त नहीं हैं। इसमें उनके विघ्न बढ़ जाते हैं और जिन चिन्ताओं से बचना

उनके कार्य के लिए आवश्यक है, वे बढ़ती जाती हैं और संघर्ष की मात्रा बढ़ती जाती है। ऐसे जीवन में न पति ही सन्तुष्ट हो सकता है और न पत्नी ही सुख का श्वास ले सकती है। दोनों अपनी भलाई के ऊपर जीते हैं और मन में यह भाव समय-समय पर आता रहता है कि यह कैसे झंझट में जीवन फँस गया।

एक विशेष बिन्दु में केन्द्रित अथवा एक कार्य-विशेष के लिए अर्पित जितने भी आदमी हैं, वे विवाहित जीवन में कुछ बहुत सफल नहीं हो सकते। यदि कोई ऐसा उदाहरण मिले तो मैं उसे अपवाद ही कहूँगा और यह न मनूँगा कि उसमें पति की प्रतिभा की देन उतनी नहीं है, जितना परिस्थिति, भाग्य अथवा अन्य शक्तियों का हाथ है। क्योंकि इस प्रकार का अर्पित जीवन वस्तुतः संन्यास का जीवन है। और ऐसे जीवन में दो प्रकार की आवश्यकताओं—वफादारियों—का एक साथ चलना यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।

पहले कभी चाहे यह बात इस सीमा तक ठीक न रही हो, परन्तु आज यही बात है। दुनिया एक विषम अवस्था से गुजर रही है। समाज के प्रत्येक अङ्ग को एक भयंकर झंझावात जैसे कम्पित और अस्थिर किये हुए है। विचारधाराओं का प्रति पग पर प्रबल संघर्ष है और इस संघर्ष में हमारी आशाएँ उड़ी जा रही हैं; हमारे विश्वास डगमग हो रहे हैं, हमारी मान्यताएँ चूरचूर हुई जाती हैं और हमारे संस्कार बिल्कुल अस्थिर हैं। विश्व का सम्पूर्ण जीवन आज अनिश्चित है। उसका क्या रूप बनेगा, कोई नहीं कह सकता। पुराने संस्कार गल रहे हैं। जीवन का क्या रूप होना चाहिए, इसके सम्बन्ध में भी मतभेद है, बल्कि

तीव्र संघर्ष है।

समाज की इस विषम अवस्था ने गृह-जीवन की कठिनाइयाँ बढ़ा दी हैं। आज नारी अपने को पुनः खोजने और पाने में—अपने को re-discover करने में—लगी हुई हैं। विविध विचार-धाराओं के बीच एकाएक पड़ जाने के कारण वह किंचित् घबड़ाई हुई-सी है। उसकी आवाज में रुक्षता है। उसकी आँखों में आकस्मिक जागरण का कुतूहल है। वह, वर्तमान स्थिति में, अपने स्व-भाव में नहीं है। यह ठीक नहीं कह सकती कि वह क्या चाहती है या जिसे वह अपनी आवश्यकता, अपनी माँग कहती है उसको पाकर उसका क्या करेगी। उसमें आज एक प्रतिक्रिया है; कहीं-कहीं प्रबल क्षोभ का स्वर भी है। उसके व्यवहार—आचरण—ने गृह जीवन के सम्बन्ध में नई समस्याएँ भी खड़ी कर दी हैं। उसके संयम का बाँध टूट गया है अथवा टूटता जा रहा है और वर्तमान अवस्था में वह अपने पति में अपने को पूर्णतः निमग्न करके निःस्व हो जाने को तैयार नहीं है। प्रबल हुङ्कार के साथ उसने अपने व्यक्तित्व की रक्षा की माँग की है।

ऐसी अवस्था में यह प्रश्न और जटिल हो गया है। मैं मानता हूँ कि समाज की इस विषम अवस्था में एक असाधारण प्रतिभा के व्यक्ति अथवा आत्यन्तिक निष्ठा के साथ किसी कार्य में लगे हुए पुरुषों एवं उनकी पत्नियाँ दोनों की स्थिति एक-दूसरे के लिए संकोच और चिन्ता की—embarrassment—की स्थिति है। मैं यह भी मानता हूँ कि इस अवस्था में कोई असाधारण प्रवृत्ति का प्रतिभाशाली एवं अपने लक्ष्य में केन्द्रित मनुष्य अपनी औसत दर्जे की श्रीमती के साथ सुखी एवं

सफल नहीं हो सकता और न औसत नारी ही ऐसे लोगों—जिनके दिमाग में सिद्धान्तों और आदर्श की गहरी लगन है—के साथ जीवन के मार्ग पर चलते हुए तृप्ति एवं शान्ति का अनुभव कर सकती है। क्योंकि इस प्रकार के जीवन में दम तोड़ देने वाली ऊँचाइयाँ अधिक होती हैं—उनमें कभी-कभी भयंकर कम्प, संघर्ष, आन्दोलन और उत्तोलन होता है; उनमें बाह्य सुविधाओं की प्रायः कमी होती है और इस दृष्टि से उपेक्षा, पीड़ा, अभाव, दुःख और रोदन अधिक होता है। ये बातें एक घर वाली की—एक 'सेटलर' को या स्थिर जीवन की मनोवृत्ति लेकर चलने वाली नारी के साथ मेल नहीं खाती। इतिहास में हज़ारों वर्षों में अपनी निरन्तर सेवा, बलिदान और कष्ट-सहन से जिस नारी ने गृह का निर्माण किया और भ्रमणशील पुरुष को एक जगह बसने को बाध्य किया है, वह अपने चिर-अर्जित अधिकार का त्याग कैसे कर सकती है? वह अपने पुरुष का पुनः अस्थिर, चञ्चल जीवन में पड़ना कैसे सहन कर सकती है?

इस दृष्टि से यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि असाधारण प्रतिभावाले आदमी दाम्पत्य जीवन में प्रायः असफल होते हैं। वस्तुतः उनके लिए विवाहित जीवन है नहीं, और न दाम्पत्य जीवन के सुख-स्वप्नों को लेकर विवाहित जीवन का आरम्भ करने वाली नारियों के लिए ही ऐसे पति उपयुक्त हैं।

---

[ ८ ]

# मार्ग यह है—

'विश्वबन्धु' पञ्जाब का एक लोकप्रिय हिन्दी साप्ताहिक है। इसमें पिछले दिनों 'परित्यक्ताओं के आँसू' शीर्षक से जो लेख निकले हैं, मैं उन्हें सरसरी तौर से पढ़ गया हूँ। इनमें कुछ असली घटनाओं के आधार पर परित्यक्ता बहनों की दुःख-गाथा है। इस प्रकार के लेख कुछ नये नहीं हैं; अनेक पत्रों में अनेक शीर्षकों से इस तरह की बातें निकलती रही हैं और आज भी निकलती हैं। मैंने इन विषयों के अध्ययन में अपने जीवन के पच्चीस वर्ष खर्च किये हैं, और मैं मानता हूँ कि ये घटनाएँ एक गहरी मानसिक व्याधि के लक्षण-मात्र हैं। मैं यह भी मानता हूँ कि आज का समाज इतना बेहया हो गया है कि ये घटनाएँ उसके लिए गहरी पीड़ा और व्यथा की नहीं, मनोरंजन की सामग्री बनकर रह जाती हैं।

मैं यह भी मानता हूँ कि आज की नारी स्वतन्त्रता और समता की चाहे जितनी और जैसी बातें करे, वह असल में एक तमाशे और दिल-बहलाव की चीज़ बन गई है। नकली आदर्श, नकली आकांक्षाएँ, कपड़े-लत्ते तथा प्रसाधन-द्रव्यों की प्रचुरता के बीच सजी, अपने लिए

ज़ोर से बोलनेवाली पर अपनी स्वत्व-रक्षा में अत्यन्त असमर्थ, जीवन के सपनों पर तैरनेवाली,—यदि उसका बस चले तो जमीन पर पाँव न रखे। ऐसी आधुनिकाएँ अपनी रक्षा क्या करेंगी; उलटे वे समाज के लिए एक समस्या बन गई हैं।

और अपने ग़लत दृष्टिकोण के कारण नारी आज जैसी मूर्च्छित है, वैसी कभी न थी। वह एक अस्वस्थ प्रतिक्रिया के बीच बेबस है। अपने सम्पूर्ण दावों और विरोधों के साथ भी आज की अधिकांश शिक्षित स्त्रियाँ पुरुषों की उससे अधिक गुलाम हैं जितनी उनकी माताएँ या दादियाँ थीं—यदि 'गुलाम' ही आप उन्हें कहना चाहें।

—और वह नारी, जिसने संयम और कर्तव्य की जगह भोग और मोह से अपने जीवन को आच्छन्न कर लिया है; जो अपने तारुण्य के दिनों में विवेक के उपदेशों का केवल उपहास कर सकती है; जो अपने हितचिन्तकों और अभिवाकों की सलाह ठुकराकर सस्ती भावुकता के चन्द रटे वाक्यों के आकर्षण को अधिक महत्व देती है; जो जीवन के अत्यन्त जटिल और दूरगामी बन्धनों में बँधते हुए सिनेमा के परदों के नशा पैदा करनेवाले, पर प्यास बुझा सकने में सदा असमर्थ, दृश्यों पर, स्वप्निल लहरों पर, बह रही है; वह जब जिन्दगी के एक कड़े झटके में एक दिन अपने को सूखी रेत पर अकेली पाती है,—ऐसी जगह जहाँ से यौवन के ज्वार की तरंगे दूर निकल गई हैं और जीवन के भाटे में जहाँ केवल अकेलापन है, खीझ है, रोदन है, बेबसी है तब आँखें, जीवन-युद्ध की प्रखर दोपहरी में, एकाएक खुल जाती हैं, और सामने अत्यन्त अनाकर्षक लम्बा रास्ता दूर तक चला गया दिखाई पड़ता है।

मैं पूछता हूँ कि जीवन के अत्यन्त महत्वपूर्ण अवसर पर जिस नारी ने खिलवाड़ में अपने को लुटा दिया है उसे अब रोकर समाज को गाली देने का क्या हक है ?

जीवन की समस्याएँ सस्ती भावुकता से हल नहीं हुआ करतीं। जिस प्रकार 'परित्यक्ताओं के आँसू' मैंने देखे हैं उसी प्रकार 'परित्यक्तों' की दिल मसलने वाली बेबसी भी मैंने देखी है। बहुधा पुरुष अपनी झूठी इज्ज़त के कारण बहुत सी घटनाएँ दबा देता है; उसकी पारस्परिक पर नक़ली मर्यादा ने उसे इस विषय में कायर तथा बेबस बना रखा है। अन्यथा हृदय में तूफान, आँखों में अन्तःसलिला तथा ओठों पर वह हँसी, जो व्यथा को अर्घ्य देती है, लिये जीनेवाले पुरुषों की समाज में कमी नहीं। असल में प्रश्न न केवल स्त्री का है, न केवल पुरुष का है वरं स्त्री-पुरुष दोनों का है। यदि आज हमारे गृहस्थ जीवन पर से निजत्व और ऐकांतिकता का परदा दो क्षण के लिए उठा दिया जाय तो पीड़ा और दर्द का वह भयानक दृश्य दिखाई दे कि मानवता थर्रा जायगी।

तब मैं कहता यह हूँ कि यह समाज को देखने का ग़लत दृष्टिकोण है। नारी आज पीड़िता है, वंचिता है पर पुरुष भी कुछ कम दुखी और लुटा हुआ नहीं है। दुखी दोनों हैं; पीड़ित दोनों हैं। दोनों अतृप्त, आशंकित, खीझ और परिताप से भरे हुए, दिलों की दुनिया से दूर, सस्ती भावुकता और बनावटी भावनाओं के शिकार हैं।

और इसका कारण यह है कि दोनों स्थानच्युत—'मिसप्लेस्ड'—हैं! दोनों अपने व्यक्तित्व और गौरव के प्रति अंधे और मूर्च्छित हैं

जिस नारी ने केवल अपने रूप और सजावट से पुरुष को आकर्षित करना सीखा है (देखिये आजकल के विवाह-विज्ञापन या खुद विवाह), वह अपना आकर्षण नष्ट होने पर पुरुष को दूसरी ओर आकर्षित होने पर उलाहना कैसे दे सकती है; या जो पुरुष जीवन के युद्ध में नारी को केवल विनोद की चीज़ समझकर ग्रहण करता है वह स्वप्न भंग हो जाने पर रोकर क्या कर सकता ?

एक छोटा-सा, और चंद शब्दों में, इसका हल यही है कि पुरुष पुरुष बने; नारी नारी बने। आज तो दोनों दोनों की नकल कर रहे हैं। स्वतन्त्रता की घोषणाओं और अपनी सम्पूर्ण वाग्मिता के बीच आज की नारी पुरुष का अनुकरण-मात्र है। वह अपने व्यक्तित्व की रक्षा की बातें करती है पर पुरुष के पीछे, उसके क्रिया—कलाप की नकल करती, बढ़ी जा रही है। उसकी दृष्टि अपनी अन्तःगरिमा पर नहीं, पुरुष की उच्छृङ्खलता मात्र पर है और उस उच्छृङ्खलता का इलाज उसने यह समझा है कि वह भी अधिकाधिक उच्छृङ्खल बने; वही पुरुष के पथ पर, उससे भी तेजी से भागनेवाली। दौड़ आज पतन के मार्ग पर आगे बढ़ने की है।

यह ग़लत रास्ता है। यह भयानक है। जब तक नारी अनुभव न करेगी कि वह पुरुष को निश्चिंतता और आनन्द देनेवाली मात्र नहीं है बल्कि उसे संस्कार प्रदान करनेवाली भी है; जब तक वह न समझेगी कि वह **'रमणी'** है पर रमणी से अधिक **'माता'** है;—वह पुरुष जाति की माता है, उसने युगों से सभ्यता का दीपक लेकर उसे बुझने से बचाते हुए यात्रा की है, उसने मानव जाति को दया, ममता, मृदुलता

और स्नेह का दान किया है तब तक सब बातें हेच हैं; तब तक कुछ न होगा।

और जब तक पुरुष यह न समझेगा कि जीवन के लिए तितलियों की अपेक्षा स्वस्थ मानस की अन्नपूर्णाओं की अधिक आवश्यकता है और जिस नारी में मृदुलता के साथ मातृत्व का कर्तव्य-भाव नहीं है उसे लेकर घर नहीं बनाया जा सकता तब तक स्वप्न-भंग के सिवा उसके पल्ले और क्या पड़ेगा?

क्यों आज नारी में यह आत्म-सम्मान नहीं कि उसके वर्ग की एक सदस्या को, उसकी एक बहन को, धोखा देने वाला पुरुष चाहे उसे निज के लिए कितना भी आकर्षण रखने वाला हो, त्याज्य है? क्यों वह अपनी एक बहिन के प्रति वंचना पुरुष का सहयोग करती है! यह कहना कि वह अज्ञान है, झूठ है। पढ़ी-लिखी, समझदारी का दावा करने वाली, नई सभ्यता के वातावरण में पत्नी स्त्रियाँ यह करती हैं!

आज दिलों की दुनिया छोटी पड़ गई है और उस पर रूप का जगमग-जगमग करता एक स्वप्नलोक छा गया है। रहते हम जमीन पर हैं पर जीते उसी स्वप्नलोक में हैं। आधुनिक सभ्यता ने जीवन को वंचनाओं से भर दिया है। पुरुष नारी को और नारी पुरुष को धोखा देने में जीवन की सफलता मानती है। पर बात यहीं तक नहीं; वे अपने प्रति भी वंचनापूर्ण हैं। जो दूसरों को धोखा देना चाहता है, उसका अपने को पहले धोका देना जरूरी है। आज का जीवन अन्तःमुखी नहीं केवल बहिर्मुखी है। इसलिए ज़रा-से प्रलोभन, ज़रा-से झटके उन बन्धनों का अन्त कर देते हैं जिनको लेकर एक दिन पुरुष और स्त्री ने संयुक्त यात्रा

आरम्भ की थी, और जिनको लेकर समस्त मानव-संस्कृति आगे बढ़ी है।

आज जब जगत् पर मरण का अन्धकार छा गया है, जब मानवता के शाश्वत सत्य दानवता के मुख में हैं तब रोने से काम न होगा। तब नारी को अपने गौरव की परम्परा की रक्षा के लिए खड़ी होना पड़ेगा। तब उसे देखना होगा कि जिस पुरुष को उसने सभ्यता और संस्कृति की दीक्षा दी, जिसमें उसने ममत्व का विकास किया, और जिस पुरुष की वह माता है वह उसका अपमान न कर सकेगा।

मैं आज अपनी बहिनों से पूछता हूँ कि तुममें अपनी लघुता का भाव क्यों है? क्यों तुमने अपने को इतना अपदार्थ, अशक्त, निर्जीव समझ रखा है कि पुरुषों के सामने अपने आँसू धूल में मिलाती फिरती हो? यह तुम्हारा भ्रम है कि तुम कुछ करने की अवस्था में नहीं हो। तुम सर्वशक्तिमयी हो; तुम सर्वमंगला हो। पुरुष का गौरव तुमसे है; उसकी संस्कृति तुमको लेकर है; उसकी सभ्यता तुम्हारे आत्मदान पर निर्मित हुई है, पर तुमने अपने को विलास-कक्षों में बन्द कर रखा है, तुम पुरुषों के हाथ गुड़िया बन गई हो। आज जीवन का रुद्ध कपाट खोल दो; अपने सम्पूर्ण गौरव के साथ, अपने व्यक्तित्व और निजत्व को लेकर, खड़ी हो, और यह घोषणा तुम्हारे प्रत्येक कार्य में पुनः प्रतिध्वनित हो कि तुम पुरुष की अनुगामिनी नहीं हो; तुम उसकी सहकर्मिणी, तुम उसकी सहधर्मिणी हो, तुम उसकी माता हो, और वह एक क्षण तुम्हारा अपमान करके रह नहीं सकता। दासता तुम्हारा पथ नहीं; पर प्रतिक्रिया भी तुम्हारा मार्ग नहीं है। आज मंगल-सूत्र से बँध-कर पारस्परिक सहयोग और सम्मान की रक्षा ही श्रेय है।

---